वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

नवंबर-दिसंबर 2023



गदर पार्टी (15)



अछूत का सवाल (5)



बच्चों के लिए अर्थशास्त्र (21)



अंधविश्वासों का फैलता मायाजाल (23)



आज़ादी का सबसे बड़ा दुश्मन संतुष्ट गुलाम है - चे गुएरा

घेर लो किसी देश को



घेर लो किसी भी देश को
बरसा दो बम
कर दो नेस्तनाबूद
आतंकवादी घोषित कर दो उसे
फहरा दो विजय पताका
सीमाओं को सील कर दो

बिजली-पानी काट दो
राशन की सप्लाई बंद कर दो
राहत सामग्री के ट्रक तैयार रखो
राख कर दो हस्पतालों को
भेज दो एंबुलेंस की गाड़ियां
चिथड़े उड़ा दो आदमी के
दवाईयों के जहाज रवाना कर दो
मलबे में बदल दो स्कूलों को
सैनिक शिक्षा लागू कर दो
बचे खुचे लोगों को कहो
वे भाग जाएं जहां तक भाग सकते हैं
जंगलों ,खेतों ,नदियों,पहाड़ों तक
जहां जहां वे जाएंगे
वहां वहां स्थापित करो शरणार्थी शिविर
विस्थापितों को शरण दो

अरे ओ ! दुनिया के कर्णधारों!
जला डालो इंसानियत का इतिहास
मिथकों के ग्रंथ रच डालो
फोड़ दो सबकी आंखें
दिखा दो जन्नत के ख्वाब
काट डालो उनकी जुबां
आजादी की घोषणा कर दो
जड़ दो बंदिशें हवाओं पर
आसमान पर लोकतंत्र लिख दो

– जयपाल

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028
संपादक
प्रा बलवंत सिंह
tarksheeleditor@gmail.com
94163 24802
संपादकी मंडल
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार बाई कनेडा
प्रधान TRSC (+1-672-558-5757)
अछर सिंह खरलवीर कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44-748-635-1185)
मा. भजन सिंह कनेडा, बलदेव रहिपा टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

प्रा. बलवंत सिंह, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी, संपादक, मकान न. 1062, आदर्श नगर, पिपली, जिला कुरूक्षेत्र-136131 (हरियाणा) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट से मुद्रित करके तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण हेतु जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर
+91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए:
www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.wordpress.com

Tarksheel on Mobile App:
Readwhere.com

संपादकीय

सितंबर महीने के आरम्भ में दिल्ली में विश्व के 19 देशों (यूरोपियन समूह) तथा अफ्रीकी यूनियन पर आधारित जी-20 (G-20) शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ। यह समूह विश्व के 60 प्रतिशत भू-भाग, दो तिहाई आबादी, 75 प्रतिशत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा 80 प्रतिशत विश्व सकल उत्पाद (विश्व के तमाम देशों की जी.डी.पी. (G.D.P.) का जोड़) की प्रतिनिधित्व करता था। 1999 में अस्तित्व में आए इस समूह के शिखर सम्मेलन 2007 तक तो विदेश मंत्री स्तर के होते थे, परन्तु वर्ष 2008 में संपूर्ण विश्व में गहराए वित्तीय/आर्थिक संकट के पश्चात् यह राष्ट्रपति/प्रधान मंत्री के स्तर के होने लगे। 2023 में हुए इसके शिखर सम्मेलन की अध्यक्षता/मेजबानी भारत ने की है। भारत की मोदी सरकार ने भारत में इन 'विशेष' मेहमानों (साम्राज्यवादी मित्रों) के स्वागत के लिए दिल्ली को बनावटी तौर पर सुंदर दर्शाने के लिए करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया। दिल्ली में गरीब मेहनतकश लोगों की बस्तियों को पर्दों के पीछे ढक कर एक तरह बाड़ाबंद कर दिया गया। सम्मेलन के लिए नारा दिया गया-'वसुधैव कुटुम्बकम्' (उपनिषद् में से)। इसका भावार्थ है-'संसार एक परिवार है' (The world is one family.)। तो क्या फिर ये बाड़ाबंद किये गए मेहनतकश लोग इस परिवार का हिस्सा नहीं माने जाते। हां, बिलकुल नहीं! इस व्यवस्था द्वारा वैसे भी उनको पूरी तरह से हाशिये पर धकेल दिया गया है। क्या फिर यह वसुधैव-कुटुम्बकम् का 'जाप' कोरा पाखण्ड नहीं है? वर्ष 2023 की भुखमरी से संबंधित वैश्विक सूचकांक (Global Hunger Index) की सूची में भारत के 125 देशों में 111वां स्थान मिला है। भारत कुपोषण के शिकार बच्चों के पक्ष से भी विश्व में सर्वाधिक दर वाला 18.7 प्रतिशत वाला देश है। जुलाई 2023 में जारी नीति आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार 74 प्रतिशत भारत के लोग संतुलित भोजन का खर्च उठाने के योग्य नहीं हैं। 'आत्म निर्भर भारत' के तमाम जुमलों के बावजूद भारत की आयात पर निर्भरता बढ़ती ही चली जा रही है। बढ़ते हुए आयात का नतीजा हमेशा यही होता आया है कि उस देश की अपनी उत्पादक क्षमता नहीं बढ़ती, इसलिए रोजगार भी नहीं बढ़ता। रोज़गार न मिलने के कारण नौजवानी विदेशों की ओर प्रवास कर रही है। नौजवानी को नशों की ओर धकेला जा रहा है, अथवा उनके हाथों में त्रिशूल, तलवारें पकड़ाईं जा रही हैं। लोगों की समस्याओं का समाधान करने में असफल हो रही भारत की शासन-व्यवस्था अपनी आयु लंबी करने के लिए लोगों को धर्मों, अन्धविश्वासों के अंधेरे की ओर धकेल रही है। नई पीढ़ी को विज्ञान से महरूम रखने के लिए पाठ्यक्रमों को गैर-वैज्ञानिक पथ पर डाला जा रहा है। वैज्ञानिक विचारधारा को विशाल चुनौतियों के इस दौर में समाज के जागरूक लोगों की जिम्मेदारी भी बड़े स्तर पर तय होती है। मीडिया से महंगाई, बेरोजगारी, स्वास्थ्य, शिक्षा, मज़दूरों-किसानों के संकट, महिलाओं, अल्पसंख्यकों, दलितों पर बढ़ रहे अत्याचार गायब हैं। मीडिया पूरी तरह से जन-विरोधी शासकों के शिकंजे में है। यदि इक्का-दुक्का सिर उठाता है तो यहां का शासन प्रबन्ध उसका गला घोट देता है। जागरूक जन-शक्ति ही देश को इस दशा से बाहर निकाल सकती है। परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है, यह हो कर ही रहेगा।

पूजा पाठ से पूरी नहीं होती उम्मीदें

राकेश नाथ

आज लोगों ने आधुनिकता का जामा जरूर पहन लिया है लेकिन सोच अब भी वही सदियों पुरानी धार्मिक अंधविश्वासों में जकड़ी हुई है. पूजापाठ और कर्मकांडों में लिप्त लोगों की कितनी मनोकामनाएं पूर्ण हैं?

शहर की एक पॉश कालोनी की 2 युवतियां चुस्त जींस व टीशर्ट पहने अंगरेजी में बातचीत करते हुए मंदिर की ओर जा रही थीं. मंदिर के बाहर दुकान से प्रसाद, नारियल, अगरबत्ती आदि लीं. मंदिर में दोनों बड़ी श्रद्धा से लेट कर नाक रगड़ कर भगवान की मूर्त के आगे नतमस्तक हुईं, पूजा की, बुदबुदा कर कुछ कहा और बाहर आ गई.

एक युवती दूसरी से बोली, ''मैं ने भगवान से कहा है कि यदि मेरा मेडिकल में चयन हो जाएगा तो मैं 5 मंगलवार, 5 शुक्रवार और 5 सोमवार तक व्रत रखूंगी, बराबर मंदिर आऊंगी और प्रसाद चढ़ाऊंगी।''

यह सुन कर दूसरी युवती बोली, ''तेरे साथ मैं भी मंदिर आया करूंगी, जब भगवान तेरी सुनेंगे तो मेरी मनोकामना भी जरूर पूरी होगी और ऐसा होने पर मैं भगवान की एक मार्बल की मूर्ति खरीद कर लाऊंगी।''

इस तरह के दृश्य हर जगह मंदिरों में देखने को मिलते हैं. पहनावे, रहनसहन में भले ही हम कितने ही आधुनिक हो गए हों, बातें मोबाइल फोन, सुपरकंप्यूटर व इंटरनेट की करते हों, लेकिन विचारों से आज भी हम सब मध्ययुग में जी रहे हैं. धार्मिक अंधविश्वासों, कर्मकांडों, कुरीतियों, ऊंचनीच, ढोंगियों, साधुओं की जमात को ले कर हमारी सोच आज भी पुरातन ही है. शिक्षित होने के बाद भी लोगों में वैज्ञानिक सोच का विकास नहीं हुआ, यही कारण है कि बिना सोचेसमझे ही उच्च शिक्षित डॉक्टर, इंजीनियर तथा कान्वेंट शिक्षित युवतियां भी गणेश की मूर्ति को दूध पिलाने चली जाती हैं. इन धार्मिक अंधविश्वासों ने जनसामान्य के विवेक, चिंतन व अध्ययन को तो लगभग क्षीण ही कर दिया है।

महिलाएं परिवार की मुख्य धुरी होती हैं और यदि यही अंधविश्वासों के जाल में फंसी रहीं तो उस परिवार का क्या होगा? धार्मिक रूढ़ियों व निरर्थक कर्मकांडों के कारण ही हमें दुनिया के विकसित लोग, असभ्य व पिछड़ा मानते हैं. बेशक लड़कियां मेडिकल, इंजीनियरिंग, कंप्यूटर आदि में उच्च शिक्षा ले रही हों, लेकिन तंत्रमंत्र, जादूटोना, भूतप्रेत, पूजापाठ व कर्मकांड के मायाजाल में वे उलझी हुई हैं। इन में से ज्यादातर लड़कियों का मानना है कि आज वह जो कुछ हैं सिर्फ भगवान की कृपा की बदौलत हैं। उस मेहनत को वे नजरअंदाज कर देती हैं, जो उन्होंने की थी। वे यह भी मानती हैं कि भगवान की कुदृष्टि से सर्वनाश हो सकता है।

कहा जाता है कि हिंदू धर्म में देवीदेवता की संख्या हजारों लाखों में नहीं करोड़ों में है और अब भी प्रतिदिन कोई न कोई चमत्कारिक देवीदेवता पैदा हो ही रहा है। अपनी मनोकामनाएं पूरी करवाने के लिए महिलाएं देवी देवताओं के मंदिरों में जाती हैं। हर दिन सुबह शाम और कई खास दिनों में तो पूरा दिन पूजा-पाठ में गंवा देती हैं। कई मंदिरों में तो पूरे वर्ष ही वृद्ध महिलाएं दिनभर मंदिरों में ढोल मंजीरे कूटती नजर आती हैं। कई बार तो महिलाएं अपने पति व बच्चों की जरूरतों को भी नजरअंदाज कर सुबह शाम पूजा में व्यस्त रहती हैं इस से परिवार, समाज व देश का काफी कीमती समय बरबाद होता है।

पूजापाठ करने वाली महिलाएं तर्क देती हैं कि ऐसा करने से उन्हें आत्मिक शांति मिलती है। इस बात को प्रमाणित करना है तो किसी भी मंदिर में चले जाइए। देशभर के मंदिरों की हालत देख कर ऐसा नहीं लगता कि वहां जाने से किसी को मानसिक शांति मिलती होगी।

घंटे, घड़ियाल, शंख, आरती और जयकारे की ऊंची आवाज का शोर शायद ही किसी को कर्णप्रिय लगता हो. यह सब केवल देखादेखी किया जाता है वरना मंदिरों की व्यवस्था किसी से छिपी है। अकसर मंदिर में जाने वाले को यह चिंता रहती है कि बाहर खोले गए उस के जूते को कोई दूसरा न चुरा ले जाए क्योंकि एक भक्त द्वारा दूसरे भक्त के अच्छे जूते देख कर चुराना एक आम बात है। मंदिर के अंदर भी भीड़ के कारण धक्कामुक्की होती है, मनचले औरतों के साथ छेड़छाड़ करते हैं, फूलमालाएं पैरों तले रौंदी जाती हैं। पुजारियों द्वारा अंधभक्तों को लूटा जाता है। भला ऐसे महौल में पूजापाठ कर कैसी शांति मिलती होगी? संभवतया तो वहां जाने वाले भी बेहतर नहीं जानते हैं।

शेष पृष्ठ 4 पर

अंधविश्वास

मुंशी प्रेमचंद

हिन्दू–समाज में पूजने के लिए केवल लंगोट बांध लेने और देह में राख मल लेने की जरूरत है; अगर गांजा और चरस उड़ाने का अभ्यास भी हो जाए, तो और भी उत्तम। यह स्वांग भर लेने के बाद फिर बाबाजी देवता बन जाते हैं। मूर्ख हैं, धूर्त हैं, नीच हैं, पर इससे कोई प्रयोजन नहीं। वह बाबा हैं। बाबा ने संसार को त्याग दिया, माया पर लात मार दी, और क्या चाहिए? अब वह ज्ञान के भंडार हैं, पहुंचे हुए फकीर, हम उनके पागलपन की बातों में मनमानी बारीकियां ढूंढ़ते हैं, उनको सिद्धयों का आगार समझते हैं। फिर क्या है! बाबा जी के पास मुराद मांगने वालों की भीड़ जमा होने लगती है। सेठ–साहूकार, अमले फैले, बड़े–बड़े घरों की देवियां उनके दर्शनों को आने लगती हैं। कोई यह नहीं सोचता कि एक मूर्ख, दुराचारी, लंपट आदमी क्योंकर लंगोटी लगाने से सिद्ध हो सकता है। सिद्धि क्या इतनी आसान चीज़ है? इसमें मस्तिष्क से काम लेने की मानो शक्ति ही नहीं रही। दिमाग को तकलीफ नहीं देना चाहते हैं। भेड़ों की तरह एक–दूसरे के पीछे दौड़े चले जाते हैं, कुएं में गिरें या खंदक में, इसक गम नहीं। जिस समाज में विचार–मंदता का ऐसा प्रकोप हो, उसको संभालते बहुत दिन लगेंगे।



हमारे इस अंध–विश्वास से अपना मतलब निकालने वालों के बड़े–बड़े जत्थे बन गए हैं। ऐसी कई जातियां पैदा हो गई हैं, जिनका पेशा ही है इस तरह स्वार्थ से भोले–भाले भक्तों को ठगना। ये लोग रूप भरना खूब जानते हैं। बाबाओं की पेटेंट शैली में बातचीत करने का और नए–नए हथकंडे खेलने का उन्हें खूब अभ्यास होता है। एक सिद्ध बन जाता है, कई उसके चेले बन जाते हैं, और किसी उजाड़ स्थान पर डेरा डाल देते हैं, मानो आदमियों के साथ से भी भागना चाहते हैं, भोग–विलास में लिप्त मनुष्यों से किसी तरह का संसर्ग नहीं रखना चाहते। किसी तरह यह अफवाह उड़ा दी जाती है कि बाबा जी फौहारी हैं, केवल एक बार तोला पर दूध ही लेते हैं। एक दिन, दो दिन यह मंडली, निष्काम भाव से ऊजड़ में घात लगाए पड़ी रहती है। बस, भक्तों का आना शुरू हो जाता है। बाबा जी 'संसार मिथ्या है' का उपदेश देने लगते हैं, उधर घी, शक्कर और आटे की झड़ी लग जाती है, लकड़ियों के कुवें गिरने लगते हैं। कुछ भक्त लोग इन त्यागियों के लिए कुटी बनाना शुरू कर देते हैं, और मर्द भक्तों से कहीं अधिक संख्या स्त्री भक्तों की होती है। कोई लड़के की मुराद लेकर आती है, कोई अपने पति की किसी सौतिन के रूप–फांस से छुड़ाने के लिए। जिन लफंगों को दो आने रोज की मंजदूरी न भी लगती, वे ही हिन्दुओं के इस अंधविश्वास के कारण खूब तर माल उड़ाते हैं, खूब नशा पीते हैं और खूब मौज करते हैं और चलते वक्त सौ पचास रुपये कोई ब्रह्म–भोज कराने या भंडारा चलाने के लिए वसूल कर लेते हैं। समाज सेवा का कोई–न–कोई आधार यह लोग जरूर खड़ा कर लेते हैं। कोई मंदिर बनवाने का व्रत ठाने बैठा है, कोई तलाब खुदवानें का, कोई पाठशाला खोलने का और कुछ न हुआ तो तीर्थयात्रा तो है ही। बिना हर्र–फिटकरी के माल चोखो करने का यह व्यवसाय इतना आम हो गया है कि आज हर पच्चीस आदमियों में से एक साधु है और ऐसे भिक्षुकों की तो गिनती ही नहीं, जो खैरात पर जिंदगी बसर करते हैं। ज्यादा नहीं तो पच्चीस करोड़ में पांच करोड़ तो ऐसे लोग होंगे ही।

जिस समाज पर इतने मुफ्तखोरों का भार लदा हुआ है, वह कैसे पनप सकता है, कैसे जाग सकता है? ये लोग बार–बार यही प्रयत्न करते रहते हैं कि समाज अंधविश्वास के गर्त में मूर्च्छित पड़ा रहे, चेतने न पावे। हमें खूब चकाचक माल खिलाओ, स्वर्ग में तुम्हें इससे भी बढ़िया माल मिलेगा। इस हाथ दो, उस हाथ लो। स्वर्ग का रूप भी कितना मोहक खींच रखा है कि इन लोगों की कल्पना शक्ति पर कुर्बान जाइए। मृत्यु–लोक में जो कुछ दुर्लभ है, वह सब वहां गली–गली मारा–मारा फिरता है। ऐसे सुख के लिए किसी भिक्षुक को थोड़ा–सा भोजन करा देना, किसी देवता को जल चढ़ा देना या किसी नदी में एक डुबकी लगा देना, कौन खुशी से स्वीकार न करेगा।

और आज बड़ी–बड़ी ज़मींदारियों के मालिक कितने

ही महंत हैं। उनकी लेन-देन की कोठियां चलती हैं, तरह-तरह के व्यवसाय होते हैं और बहुधा उन्हीं दानियों की संतानें, जिन्होंने यह जायदाद शक्ति से बनायी थी, महंतों से रुपये कर्ज़ लेती हैं। इनका भोग-विलास और ऐश्वर्य हमारे राजाओं को भी लज्जित कर सकता है। इस जायदाद का उपयोग अब इसके सिवा कुछ नहीं है कि मुस्टंडे खाएं, डंड पेलें और व्यभिचार करें। राष्ट्र के उत्थान या जागृति में यह भी एक बहुत बड़ी बाधा है। अंध विश्वासी जनता अब भी उन पर श्रद्धा रखती है। वे उसे एक चुटकी राख से स्वर्ग में दाखिल कर सकते हैं। ऐसी विभूति और किसके पास है? इन महंतों के दुराचार, ऐयाशी और पैशाचिकताओं की खबरें कभी-कभी प्रकाश में आ जाती हैं, तो मालूम होता है कि इनका कितना पतन हो गया है, लेकिन मुरादियों को उन पर वही श्रद्धा है। हम इतने अकर्मण्य हो गए हैं, इतने पुरुषार्थहीन कि हमें अपने पुरुषार्थ से ज्यादा भरोसा आशीर्वाद पर है। एक प्रकार से हमारी विचार-शक्ति लुप्त हो रही है। हमारे तीर्थ स्थान क्या हैं? ठगों के अड्डे और पाखंड़ियों के अखाड़े। जिधर देखिए धर्म के ढोंग का बाजार गर्म है। गली-गली मंदिर, गली-गली पुजारी और भिक्षुक, पूरे नगर के नगर इन्हीं जीवों से आबाद हैं, जिनका इसके सिवा कोई उद्यम नहीं कि धर्म का ढोंग रचकर बेवकूफ भक्तों को ठगें, और क्यों न ठगें? जब जनता खुद ठगी जाना चाहती है, तो ठगने वाले भी जरूर पैदा होंगे। जरूरत ही तो आविष्कार की मां है।

क्यों न देश कंगाल हो? जिस समाज पर एक करोड़ कोतल मूसलचंदों के भरण-पोषण का भार हो, वह न कंगाल रहे तो दूसरा कौन रहेगा। गरीबों पर भी धर्म का जितना बड़ा टैक्स है, उतना शायद सरकार का भी न हो। कोई ग्रहण लगा और जनता तीर्थस्थानों की ओर दौड़ी। जो कुछ तन-पेट काटकर बचाया था, वह सब अंध-विश्वास की भेंट चढ़ गया, और आज स्वराज्य भी मिल जाए, और यह भी मान लें कि उस वक्त किसानों से लगान कम लिया जाएगा और टैक्सों का भार कम हो जाएगा, फिर भी अंध विश्वास के सम्मोहन में अचेत जनता इससे ज़्यादा सुखी न होगी। तब उसका परलोक-प्रेम और भी बढ़ेगा और वह भी आसानी से पाखंडियों का शिकार हो जाएगी, और इस आर्थिक दरिद्रता से बढ़कर इस अंधविश्वास का फल जनता की बौद्धिक दुर्बलता है, जो उसकी सामाजिक उपयोगिता में बाधक होती है। उसे नदी में गोता मार लेना, या जल चढ़ा देना, किसी भाई से सहानुभूति रखने या अपने व्यवहारों में सच्चाई का पालन करने की अपेक्षा ज्यादा फलदायक मालूम होता है। उसने असली धर्म को छोड़कर, जिसका मूल तत्व है समाज की उपयोगिता, धर्म के ढोंग को धर्म मान लिया है। शिक्षित समाज के सामने जितनी समस्याएं हैं, उनमें शायद सबसे कठिन समस्या यही है। यहां उसे अंधविश्वास की पोषक प्रबल शक्तियों का सामना करना पड़ेगा, जो अनंत काल से जनता की विचार-शक्ति पर कब्जा जमाए हुए हैं।

कितना बीभत्स है वह दृश्य-एक मोटा-सा जटाधारी जीव धूनी जलाए बैठा हुआ है और एक दर्जन मनुष्य उसके पास बैठे चरस के दम लगाकर अपने जीवन को सफल कर रहे हैं। जनता की मनोवृत्ति जब तक ऐसी है, केवल राजनैतिक अधिकारों से उसका कल्याण नहीं हो सकता।

अब देश में ऐसे सच्चे ''संन्यासियों'' का एक दल निकल आया है, जो समाज सेवा को और राष्ट्रीय जागृति को अपने जीवन का ध्येय बनाए हुए हैं; लेकिन अभी तक उन्होंने निकम्मे साधुओं में जागृति उत्पन्न करने के जितने प्रयत्न किए हैं, वे सफल नहीं हुए। न जाने कब वह अवसर आएगा कि हमारा समाज अपने कर्त्तव्य को समझ जाएगा कि उसके हाथों में देश को जगाने की कितनी बड़ी शक्ति है।

अंधविश्वास, रूढ़िवाद व तमाम कुरीतियों के खिलाफ आवाज बुलंद करें और बेहतर समाज बनाने के लिए संघर्ष करें।

पृष्ठ 2 का शेष आजकल एक नया फैशन चल पड़ा है। जब से टेलीविजन पर नए नए बेतुके धार्मिक धारावाहिक चलने लगे हैं मंदिरों के पुजारियों की तो चांदी हो गई हैं। लोग वैष्णोदेवी, बद्रीनाथ, केदारनाथ, मानसरोवर, तिरुपति, सोमनाथ, हरिद्वार आदि जगहों की तीर्थयात्रा कर पूजापाठ कर पुण्य कमाने की अधिक सोचते हैं। अपनी गाढ़ी कमाई का बड़ा हिस्सा इन तीर्थयात्राओं में गंवा देते हैं. इस से उन्हें मिलता तो कुछ नहीं, हां, इन में से जरूर कुछ लोग धार्मिक स्थानों पर होने वाली दुर्घटनाओं में बेमौत मारे जाते हैं। यदि दुनिया में तेजी से बदलते हुए परिवेश के अनुरूप हम अपने रीतिरिवाजों, तौरतरीकों में बदलाव नहीं लाएंगे तो पगपग पर दुनिया में हंसी के पात्र बनेंगे।

क्या इस पूजापाठ के कारण भारतीय वैज्ञानिक संसार में बिल्कुल नदारद नहीं हैं। सभी खोज और आविष्कार केवल पश्चिमी देशों में हुए हैं, क्योंकि हमारे साइंटिस्ट भी पूजापाठ के चक्रव्यूह में फंसे हुए हैं।

साभार- किताब -''धार्मिक कर्मकांड पंडों का चक्रव्हू''।

अछूत का सवाल

– शहीद भगत सिंह

हमारे देश जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुए। यहाँ अजब-अजब सवाल उठते रहते हैं। एक अहम सवाल अछूत-समस्या है। समस्या यह है कि 30 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श-मात्र से धर्मभ्रष्ट हो जायेगा! उनके मन्दिरों में प्रवेश से देवगण नाराज़ हो उठेंगे! कुएँ से उनके द्वारा पानी निकालने से कुआँ अपवित्र हो जायेगा! ये सवाल बीसवीं सदी में किये जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है।



हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है, लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलाने वाला यूरोप कई सदियों से इन्क़लाब की आवाज़ उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की क्रांन्तियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार का भेदभाव मिटाकर क्रांन्ति के लिए कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होने तथा इस ज़ोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जायेगा? वे वेद-शास्त्र पढ़ने के अधिकारी हैं अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सलूक नहीं होता। अंग्रेज़ी शासन हमें अंग्रेज़ों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है?

> उस समय जब इस मसले पर बहस का वातावरण था, भगतसिह ने 'अछूत का सवाल' नामक लेख लिखा। इस लेख में श्रमिक वर्ग की शक्ति व सीमाओं का अनुमान लगाकर उसकी प्रगति के लिए ठोस सुझाव दिये गये हैं। भगतसिह का यह लेख जून, 1928 के 'किरती' में 'विद्रोही' के नाम से प्रकाशित हुआ था।

सिन्ध के एक मुस्लिम सज्जन नूर मुहम्मद ने, जो बम्बई कौंसिल के सदस्य हैं, इस विषय पर 1926 में ख़ूब कहा "If the Hindu society refuses to allow other human beings, fellow creatures so that to attend public schools, and if…the president of local board representing so many lakhs of people in this house refuses to allow his fellows and brothers the elementary human right of having water to drink, what right have they to ask for more rights from the bureaucracy? Before we accuse people coming from other lands, we should see how we ourselves behave toward our own people…How can we ask for greater political rights when we ourselves deny elementary rights to human beings."

वे कहते हैं कि जब तुम एक इन्सान को पीने के लिए पानी देने से भी इन्कार करते हो, जब तुम उन्हें स्कूल में भी पढ़ने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की माँग करो? जब तुम एक इन्सान को समान अधिकार देने से भी इन्कार करते हो तो तुम अधिक राजनीतिक अधिकार माँगने के कैसे अधिकारी बन गये?

बात बिल्कुल खरी है। लेकिन यह क्योंकि एक मुस्लिम ने कही है इसलिए हिन्दू कहेंगे कि देखो, वह उन अछूतों को मुसलमान बनाकर अपने में शामिल करना चाहते हैं!

जब तुम उन्हें इस तरह पशुओं से भी गया-बीता समझोगे तो वह ज़रूर ही दूसरे धर्मों में शामिल हो जायेंगे, जिनमें उन्हें अधिक अधिकार मिलेंगे, जहाँ उनसे इन्सानों जैसा व्यवहार किया जायेगा। फिर यह कहना कि देखो जी, ईसाई और मुसलमान हिन्दू क़ौम को नुक़सान पहुँचा रहे हैं, व्यर्थ होगा।

कितना स्पष्ट कथन है, लेकिन यह सुनकर सभी तिलमिला उठते हैं। ठीक इसी तरह की चिन्ता हिन्दुओं को भी हुई। सनातनी पण्डित भी कुछ न कुछ इस मसले पर सोचने लगे। बीच-बीच में बड़े 'युगान्तरकारी' कहे जाने वाले भी शामिल हुए। पटना में हिन्दू महासभा का सम्मेलन लाला लाजपतराय –जो कि अछूतों के बहुत पुराने समर्थक चले आ रहे हैं – की अध्यक्षता में हुआ, तो ज़ोरदार बहस छिड़ी। अच्छी

नोक-झोंक हुई। समस्या यह थी कि अछूतों को यज्ञोपवीत धारण करने का हक़ है अथवा नहीं? तथा क्या उन्हें वेद-शास्त्रों का अध्ययन करने का अधिकार है? बड़े-बड़े समाज-सुधारक तमतमा गये, लेकिन लाला जी ने सबको सहमत कर दिया तथा ये दो बातें स्वीकृत कर हिन्दू धर्म की लाज रख ली। वरना ज़रा सोचो, कितनी शर्म की बात होती। कुत्ता हमारी गोद में बैठ सकता है। हमारी रसोई में नि:संग फिरता है, लेकिन एक इन्सान का हमसे स्पर्श हो जाये तो बस धर्म भ्रष्ट जाता है। इस समय मालवीय जी जैसे बड़े समाज-सुधारक, अछूतों के बड़े प्रेमी और न जाने क्या-क्या पहले एक मेहतर के हाथों गले में हार डलवा लेते हैं, लेकिन कपड़ों सहित स्नान किये बिना स्वयं को अशुद्ध समझते हैं! क्या ख़ूब यह चाल है! सबको प्यार करने वाले भगवान की पूजा करने के लिए मन्दिर बना है लेकिन वहाँ अछूत जा घुसे तो वह मन्दिर अपवित्र हो जाता है! भगवान रुष्ट हो जाता है! घर की जब यह स्थिति हो तो बाहर हम बराबरी के नाम पर झगड़ते अच्छे लगते हैं? तब हमारे इस रवैये में कृतघ्नता की भी हद पायी जाती है। जो निम्नतम काम करके हमारे लिए सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं, उन्हें ही हम दुरदुराते हैं। पशुओं की हम पूजा कर सकते हैं, लेकिन इन्सान को पास नहीं बिठा सकते।

आज इस सवाल पर बहुत शोर हो रहा है। उन विचारों पर आजकल विशेष ध्यान दिया जा रहा है। देश में मुक्ति-कामना जिस तरह बढ़ रही है, उसमें साम्प्रदायिक भावना ने और कोई लाभ पहुँचाया हो अथवा नहीं लेकिन एक लाभ ज़रूर पहुँचाया है। अधिक अधिकारों की माँग के लिए अपनी-अपनी क़ौम की संख्या बढ़ाने की चिन्ता सभी को हुई। मुस्लिमों ने ज़रा ज़्यादा ज़ोर दिया। उन्होंने अछूतों को मुसलमान बनाकर अपने बराबर अधिकार देने शुरू कर दिये। इससे हिन्दुओं के अहम को चोट पहुँची। स्पर्धा बढ़ी। फसाद भी हुए। धीरे-धीरे सिखों के बीच अछूतों के जनेऊ उतारने या केश कटवाने के सवालों पर झगड़े हुए। अब तीनों क़ौमें अछूतों को अपनी-अपनी ओर खींच रही हैं। इसका शोर-शराबा है। उधर ईसाई चुपचाप उनका रुतबा बढ़ा रहे हैं। चलो, इस सारी हलचल से ही देश की बदतर लानत दूर हो रही है।

इधर जब अछूतों ने देखा कि उनकी वजह से इनमें फसाद हो रहे हैं तथा उन्हें हर कोई अपनी-अपनी ख़ुराक समझ रहा है तो वे अलग ही क्यों न संगठित हो जायें? इस विचार के अमल में अंग्रेज़ी सरकार का कोई हाथ हो अथवा न हो लेकिन इतना अवश्य है कि इस प्रचार में सरकारी मशीनरी का काफ़ी हाथ था। 'आदि धर्म मण्डल' जैसे संगठन उस विचार के प्रचार का परिणाम हैं।

अब एक सवाल और उठता है कि इस समस्या का सही निदान क्या हो? इसका जवाब बड़ा अहम है। सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से। अर्थात क्योंकि एक आदमी ग़रीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवनभर मैला ही साफ़ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक़ नहीं है, ये बातें फ़िज़ूल हैं। इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कहकर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे। साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्वजन्म के पापों का फल है। अब क्या हो सकता है? चुपचाप दिन गुज़ारो! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए शान्त करा गये। लेकिन उन्होंने बड़ा गलत किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज उस सबके प्रायश्चित का वक़्त है।

इसके साथ एक दूसरी गड़बड़ी हो गयी। लोगों के मनों में आवश्यक कार्यों के प्रति घृणा पैदा हो गयी। हमने जुलाहे को भी दुत्कारा। आज कपड़ा बुनने वाले भी अछूत समझे जाते हैं। यू-पी- की तरफ़ कहार को भी अछूत समझा जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा हुई। ऐसे में विकास की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा हो रही हैं।

इन तबकों को अपने समक्ष रखते हुए हमें चाहिए कि हम न इन्हें अछूत कहें और न समझें। बस, समस्या हल हो जाती है। नौजवान भारत सभा तथा कांग्रेस ने जो ढंग अपनाया है, वह काफ़ी अच्छा है। जिन्हें आज तक अछूत कहा जाता रहा, उनसे अपने इन पापों के लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए तथा उन्हें अपने जैसा इन्सान समझना, बिना अमृत छकाये, बिना कलमा पढ़ाये या शुद्धि किये उन्हें अपने में शामिल करके उनके हाथ से पानी पीना, यही उचित ढंग है। और आपस में खींचतान करना और व्यवहार में कोई भी हक़ न देना, कोई ठीक बात नहीं है।

जब गाँवों में मज़दूर-प्रचार शुरू हुआ, उस समय किसानों को सरकारी आदमी यह बात समझाकर भड़काते थे कि देखो, ये भंगी-दलितों को सिर पर चढ़ा रहे हैं और तुम्हारा काम बन्द करवायेंगे। बस किसान इतने में ही भड़क गये। उन्हें याद रहना चाहिए कि उनकी हालत तब तक नहीं सुधर सकती जब तक कि वे इन ग़रीबों को नीच और कमीना कहकर अपनी जूती के नीचे दबाये रखना चाहते हैं। अक्सर कहा जाता है कि वे साफ़ नहीं रहते। इसका उत्तर साफ़ है – वे ग़रीब हैं। ग़रीबी का इलाज करो। ऊँचे-ऊँचे कुलों के ग़रीब लोग भी कोई कम गन्दे नहीं रहते। गन्दे काम करने का बहाना भी नहीं चल सकता, क्योंकि माताएँ बच्चों का मैला साफ़ करने से मेहतर तथा अछूत तो नहीं हो जातीं।

लेकिन यह काम उतने समय तक नहीं हो सकता जितने समय तक कि अछूत क़ौमें अपनेआप को संगठित न कर लें। हम तो समझते है कि उनका स्वयं को अलग संगठनबद्ध करना तथा मुस्लिमों के बराबर गिनती में होने के कारण उनके बराबर अधिकारों की माँग करना बहुत आशाजनक संकेत है। या तो साम्प्रदायिक भेद का झंझट ही ख़त्म करो, नहीं तो उनके अलग अधिकार उन्हें दे दो। कौंसिलों और असेम्बलियों का कर्तव्य है कि वे स्कूल-कॉलेज, कुएँ तथा सड़क के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता उन्हें दिलायें। ज़बानी तौर पर ही नहीं, वरना साथ ले जाकर उन्हें कुओं पर चढ़ायें। उनके बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिलायें। लेकिन जिस लेजिस्लेटिव असेम्बली में बाल-विवाह के विरुद्ध पेश किये बिल तथा मज़हब के बहाने हाय-तौबा मचायी जाती है, वहाँ वे अछूतों को अपने साथ शामिल करने का साहस कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगें। हम तो साफ़ कहते हैं कि उठो, अछूत कहलाने वाले असली जन-सेवको तथा भाइयो उठो! अपना इतिहास देखो। गुरु गोविन्द सिह की फ़ौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सबकुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी ज़िन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियाँ स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोत्तरी करके और ज़िन्दगी सम्भव बनाकर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलिएनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी ज़मीन नहीं ख़रीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से आप को कम भी कहती हैं -उठो, अपनी शक्ति को पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिशें किये बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow) स्वतन्त्रता के लिए स्वाधीनता चाहने वालों को स्वयं यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गयी हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो उनके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाये रखना चाहते हैं। कहावत है, 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते'। अर्थात संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इन्कार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और ग़रीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सबकुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ हानि न होगी। बस गुलामी की ज़ंजीरें कट जायेंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बग़ावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रान्ति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो, सोये हुए शेरो! उठो, और बग़ावत खड़ी कर दो।

काकीनाडा में 1923 में कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आजकल की अनुसूचित जातियों को, जिन्हें उन दिनों 'अछूत' कहा जाता था, हिन्दू और मुस्लिम मिशनरी संस्थाओं में बाँट देने का सुझाव दिया। हिन्दू और मुस्लिम अमीर लोग इस वर्ग-भेद को पक्का करने के लिए धन देने को तैयार थे।

आस्था का दीपक
अंधविश्वास के तेल से जलता है
और
तर्क की फूंक से बुझ जाता है,
इसलिए आओ तार्किक बने..!!

''तर्कशील पथ पढ़ो, तर्कशील बनो।''

अंधविश्वास विरोधी महान प्रतिभाएं

इतिहास गवाह है कि जीवन में वे ही लोग सफल हुए हैं जो मेहनती, कर्मठ और लगनशील थे।

'दि वर्ल्ड क्रिश्चियन एनसाइक्लोपीडिया' (सं. डेविड बी. बैरल, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982) द्वारा किए गए सर्वेक्षणों के अनुसार सन 1900 में ईश्वर पर विश्वास न करने वाले मात्र 2% थे जबकि 1980 में ये बढ़ कर 20.8% हो गए। तथाकथित नास्तिकों की यह बढ़ोत्तरी इस ओर संकेत करती है कि जैसे-जैसे समाज में शिक्षा एवं विज्ञानवाद का प्रचार प्रसार हुआ, अंधविश्वासों की संख्या में कमी आई। इससे यह भी स्पष्ट है कि अधिकतर अशिक्षित, पिछड़े और कमजोर मन वाले लोग ही अंधविश्वासों के शिकार होते हैं।

एक ग़लत धारणा

इस से यह धारणा बिलकुल ही गलत सिद्ध होती है कि तथाकथित भगवान के भक्त ही अपने लक्ष्य तक पहुंचते हैं या सफल होते हैं। विश्व का इतिहास एवं साहित्य उठा कर देख लीजिए, केवल वे ही व्यक्ति जीवन में सफल हुए हैं अथवा अपने लक्ष्य तक पहुंचे हैं, जो मेहनती, कर्मठ और लगनशील थे। आज के जमाने में ऐसे ही लोगों को सफल माना जाता है, न कि तथाकथित ईश्वर के भक्तों को।

अंधविश्वास फैलाने वाले धर्म के कारोबारी क्या एक भी उदाहरण ऐसा बता सकते हैं, जो बिना हाथ-पैर हिलाए महान बन गया हो ? इस के विपरीत ऐसे कर्मठ लोगों की लंबी सूची है, जिन्होंने अपने जीवन में यथासंभव अंधविश्वासों का जमकर विरोध किया, अथवा अंधविश्वासों के सांचे में अपने व्यक्तित्व को ढलने नहीं दिया। ऐसे ही व्यक्तित्वों का संक्षिप्त परिचर्य यहां प्रस्तुत है-

चार्वाक (600 ई. पू.)

लोकायत दर्शन के प्रतिष्ठापक चार्वाक कौन थे ? उनका जन्म कब और कहां हुआ था-इस संदर्भ में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि चार्वाक उन विचारकों में अग्रगण्य थे जिन्होंने ईश्वरवादी धर्मों के प्रचार प्रसार के विरुद्ध आवाज उठाई और यह घोषित किया कि ईश्वरवाद एक रुग्ण विचार प्रणाली है। इससे मानवता का कोई कल्याण होने वाला नहीं।

चार्वाक प्रत्यक्षवादी थे। उनका सैद्धान्तिक सूत्र था-'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्'। वह अनुमान आदि प्रमाणों को नहीं मानते थे, इसीलिए उनका दर्शन नास्तिक श्रेणी में गिना जाता है। उनका कहना था कि व्यक्ति को अनुमानित आत्मा परमात्मा के चक्कर में न पड़ कर सुख पूर्वक रहना चाहिए।

'वाल्मीकि रामायणम्', 'नैषधीयचरितम्', 'प्रबोधचंद्रोदय', कौटिल्यकृत', 'अर्थशास्त्र' आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों में चार्वाक के विचारों का प्रसंगवश उल्लेख मिलता है, जिससे विदित होता है कि आस्तिक दर्शनों के समानांतर चार्वाक की विचारधारा भी समाज में स्वीकृत थी।

अजित केशकंबल (523 ई. पू.)

अजित केशकंबल बुद्ध के समकालीन एक लोक विख्यात और सम्मानित चिंतक थे। 'त्रिपिटिक' में अजित के क्रांतिकारी विचार कई जगह उद्धृत किए गए हैं, जैसे-''दान...यज्ञ...हवन नहीं (बेकार है), सुकृत दुष्कृत कर्मों का फल विपाक) नहीं, यह लोकपरलोक नहीं, देवता नहीं...''

ऐसा प्रतीत होता है कि अजित ने तथाकथित तत्त्व ज्ञान में अंधविश्वास रखने वालों की अच्छी खबर ली है, वह उग्र भौतिकवादियों में गिने जाते हैं।

सुकरात (466-366 ई. पू.)

यूनानी दार्शनिक सुकरात का जन्म एथेंस के एक गरीब परिवार में हुआ था। ज्ञान संग्रह और उसका प्रसार-यही उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। वह यथार्थ में विश्वास करते थे, कल्पना में नहीं।

सुकरात ने कोई ग्रंथ नहीं लिखा, जो उसके विचारों का परिचायक हो। उनके जीवन दर्शन का परिचय उन के आचरण से मिलता है।

सुकरात न तो स्वयं अंधविश्वासी थे और न ही उन्होंने अंधविश्वासों को बढ़ाने की प्रेरणा दी। इसीलिए रूढ़िवादी धर्म के धंधेबाजों ने तरुणों को बिगाड़ने, देवों की निंदा करने और नास्तिक होने का आरोप लगा कर इन्हें जहर दे दिया था।

पिर्‌हो (365 - 370 ई. पू.)

पिर्‌हो यूनान में अरस्तू से 19 साल बाद पैदा हुए, सिकंदर को दिग्विजय यात्रा के दौरान पिर्‌हो भी उसकी फौज के साथ थे। ईरान में उन्होंने पारसी धर्माचार्यों से शिक्षा प्राप्त की। कुछ समय तक यह भारत में भी रहे, यहां उन्होंने एक दार्शनिक संप्रदाय, जिसे यूनानी लेखक 'गिस्नो सूफी' कहते हैं, का गठन किया।

पिर्‌हो ने ईश्वरवाद का खंडन किया था, परंपरावादी अंधविश्वासों से भी वह प्राय: दूर ही रहे।

एपीक्यूरस (343 ई. पू.-270 ई. पू.)

सेमाँस में जनमे एपीक्यूरस पूर्णत: अनास्थावादी थे। उन

का दर्शन अरस्तू, सुकरात एवं प्लेटो की परंपरा में विकसित हुए ईश्वरवादी आइडियलिज्म की प्रतिक्रिया में विकसित अनास्थावादी या अनीश्वरवादी दर्शन था।

उनका कहना था कि शरीर से अलग किसी आत्म तत्त्व को स्वीकार करना उचित नहीं। उन की दृष्टि में यह विश्व सूक्ष्म परमाणुओं के सांयोगिक सम्मिलन से उत्पन्न हुआ है।

एक अनंत अंतरिक्ष है और एक अनंत प्रवहमान काल है, जो भूत से भविष्य की ओर गतिशील है। इन दो तत्त्वों-अंतरिक्ष तथा समय में पदार्थों के परमाणु विभिन्न प्रकार का झंझा नर्तन करते रहते हैं, जिन के संयोग से विश्व की संरचना हुई है। इसके अतिरिक्त इस विषय का कोई कर्त्ता नहीं है।

इब्न रोश्द (1126-1198 ई.)

इब्न रोश्द का जन्म स्पेन के प्रसिद्ध नगर कार्दोवा के शिक्षित परिवार में हुआ था। रोश्द् के दादा मुहम्मा फिका इस्लामिक मीमांसा के पंडित, कार्दोवा के महाजज (काजी उल कुज्जात) तथा जामा मसजिद के इमाम थे, रोश्द ने पहले 'कुरान' कंठस्थ किया, उसके बाद उसने साहित्य, इस्लामिक मीमांसा, पैगंबर वचन आदि का भी गंभीर अध्ययन किया।

सुलतान यूसुफ तक रोश्द की विद्वत्ता की प्रशंसा पहुंची, तो उसने रोश्द से दर्शन पर लंबी चर्चा की और उसे पुरस्कार भी दिया, धीरे-धीरे रोश्द परंपरागत इस्लामिक धर्म दर्शन को कुछ सुधारवादी दृष्टि से विवेचित करने लगा, उसने अपने ये विचार शार्गिदों के समक्ष भी व्यक्त किए।

इससे धर्मांध मुल्ले चिढ़ गए, उन्होंने रोश्द के विचारों के नमक मिर्च लगा कर सुलतान के कान भर दिए और सबूत के तौर पर 100 गवाह भी पेश कर दिए, इसलाम की रक्षा के नाम पर उन्होंने रोश्द के विचारों को नास्तिक करार दिया। जनता बेहद उत्तेजित हो उठी। यदि सुलतान बीच में नहीं आता तो जनता रोश्द की बोटियां नोच लेती। सुलतान ने रोश्द को देश निकाला दे कर जैसे तैसे जनता को शांत किया।

रोश्द ने दर्शन के बुद्धि प्रधान हथियार से इस्लाम के मजहबी वादशास्त्रियों की खबर ली, सोलहवीं सदी तक पहुंचते-पहुंचते रोश्द के विचारों का इतना प्रचार हो गया कि यहूदी धर्माचार्यों को धर्म के खत्म होने का डर सताने लगा।

कबीर (1450-1518 ई.)

जनश्रुति के आधार पर कबीर एक विधवा की कोख से जनमे थे, जिस ने बदनामी के डर से नवजात शिशु को काशी के निकट लहरतारा नामक तालाब के तट पर छोड़ दिया था। बाद में नीरू नामक जुलाहे ने उधर से गुजरते हुए, उस शिशु को उठा लिया और उसका पालन पोषण किया। काजी की सलाह पर बालक का नाम 'कबीर' रखा गया।

बड़े होने पर कबीर ने जुलाहे का काम संभाल लिया। इस कार्य से जो आय होती उससे परिवार पालते और जो कुछ बचता वह साधु सेवा में लगा देते थे।

कबीर स्वभावत: फक्कड़ थे। उन्होंने समाज में व्याप्त अंधविश्वासों का जमकर विरोध किया था। उन्होंने मूर्तिपूजक अंधविश्वासों की खूब खबर ली-

''पाथर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार...
घर की चाकी कोई न पूजै, पीस खाय संसार।''

अर्थात् पत्थर पूजने (मूर्तिपूजा) से यदि भगवान मिल जाए, तो मैं पहाड़ की पूजा करने लगूं। घरों में अनाज पीसने वाली चक्कियां कोई नहीं पूजता, जिनका पिसा हुआ सारा संसार खाता है।

उन्होंने मुसलमानों को भी फटकारा था-

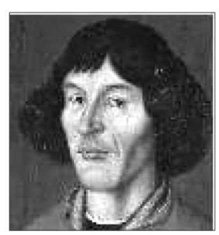
''कांकरपाथर जोरि कै मसजिद लई बनाय,
तापर मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।''

कांकड़ पत्थर जोड़ कर मसजिद बना कर मुल्ला बांग (अजान) देता है। क्या खुदा बहरा है ? माला फेरने वाले ढोंगियों की भी उन्होंने खूब खबर ली है-

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर,
कर का मनका डारि कै, गया न मन का मनका फेर।

लोगों को माला फेरते हुए युग बीत गया, किन्तु फिर भी उन के मन (विचारों) में बदलाव नहीं आया है। मनुष्य को हाथों में ली गई माला का 'मनका' त्याग कर मन के मनके का मंथन करना चाहिए।

कॉपरनिकस (1473-1543 ई.)



परंपरागत धार्मिक विश्वास रहा है कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर काटता है। किंतु पंद्रहवीं शती में प्रसिद्ध वैज्ञानिक कॉपरनिकस ने यह क्रांतिकारी सिद्धांत प्रस्तुत किया कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी सहित और मंडल के समस्त ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। इस सिद्धांत को स्वीकार करने में स्वयं वैज्ञानिकों को 100 वर्ष लग गए; फिर धर्मपरायणों की तो बात ही क्या, क्योंकि वैज्ञानिक भी मूलत: धार्मिक अंधविश्वास के शिकार थे। इन वैज्ञानिकों में न्यूटन भी थे। यह उनके वैज्ञानिक चिंतन की सब से बड़ी दुर्बलता थी।

कॉपरनिकस की यह खोज धर्म पर विज्ञान की पहली सबसे बड़ी विजय थी, जिसने उस युग के कुछ विचारकों के मन में तत्कालीन धार्मिक विश्वासों के प्रति संदेह उत्पन्न कर दिया।

सत्ता धर्माचार्यों के हाथ में होने के कारण धर्माचार्यों ने उन सभी वैज्ञानिकों को, कठोर दंड देना और उन पर अत्याचार करना आरंभ कर दिया, जो कॉपरनिकस के मत के समर्थक थे।

मार्टिन लूथर (1483–1546 ई.)

जर्मनी में सुधारवाद के जनन के रूप में प्रसिद्ध मार्टिन लूथर की तुलना कबीर से की जा सकती है, जिस प्रकार कबीर ने भारत में धार्मिक कुरीतियों और अंधविश्वासों का विरोध किया था, उसी प्रकार यूरोप में मार्टिन लूथर ने। यूरोप के मध्ययुगीन समाज में अंधविश्वास और रूढ़िवादिता का बोलबाला था। पोप को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। चर्चों का वर्चस्व था। चर्चों के अपने कानून थे, अपना न्यायालय था, अपने कारागार थे। जनता और राज्य दोनों पर पोप का शासन था।

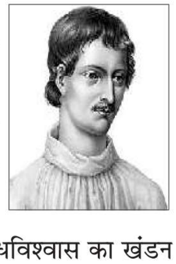
पोप ग्रेगरी सप्तम ने किसी अपराध पर सम्राट हेनरी चतुर्थ को निष्कासित कर दिया था। हेनरी पोप के द्वार पर नंगे पैर खड़ा रहता था। पोप अपने विरोधी को मृत्यु दंड तक दिलवा सकता था।

1512 में अपनी रोम यात्रा के दौन लूथर ने पोप के अत्याचार और विलासिता के प्रत्यक्षत: दर्शन किए। इस कारण चर्च के प्रति लूथर की श्रद्धा जाती रही। 1517 में पोप का प्रतिनिधि टेटजल पोप के लिए धन एकत्र करने के उद्देश्य से क्षमा पत्र बेचने जर्मनी पहुंचा।

यह जान कर मार्टिन लूथर ने विरोध स्वरूप 21 अक्तूबर, 1517 को विटनबर्ग चर्च के द्वार पर 95 प्रश्न लिख कर टांग दिए, और पोप के प्रतिनिधि को वाद–विवाद के लिए खुली चुनौती दी। विशाल जनसमूह के समक्ष वाद–विवाद हुआ, जिसमें लूथर ने क्षमा पत्रों की निस्सारता सिद्ध कर दी। उन्होंने कहा कि क्षमा पत्र खरीदने से मुक्ति नहीं मिल सकतीं। व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा आदि सब व्यर्थ हैं। जप, दान आदि निरर्थक हैं।

इसके बाद लूथर ने पोप आदि के विरुद्ध एक अभियान छेड़ दिया। एक तरह से धार्मिक संघर्ष आरंभ हो गया, जो संपूर्ण यूरोप में फैल गया। बाद में पोप ने लूथर को मृत्युदंड देने की घोषणा की। लूथर के इस आंदोलन से प्रभावित हो कर साहित्यकारों ने मानवतावादी मूल्यों की स्थापना शुरू कर दी।

ब्रूनो (1548–1600 ई.)



मध्ययुगीन यूरोप में लंबे समय तक विज्ञान और धर्म में एक संघर्ष सा चला। ग्रांड इंक्विजिशन नामक खिश्चन धार्मिक संस्था ने ब्रूनो नाम के एक वैज्ञानिक को जला कर मृत्यु दंड देने की सजा दी थी। विज्ञाननिष्ठ ब्रूनो ने उस परंपरागत चर्च के अंधविश्वास का खंडन किया था, जिस के अनुसार सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है। ब्रूनो ने यह प्रचारित किया था कि सूर्य पृथ्वी का नहीं बल्कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर काटती है।

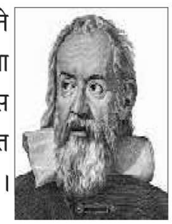
सर फ्रैंसिस बेकन (1561–1626 ई.)

अंग्रेजी में सारगर्भित निबंधों के लिए प्रसिद्ध, एक संपन्न परिवार में जन्मे बेकन को विद्वत्ता विरासत में मिली थी। त्रिनिटी कालेज और कैंब्रिज विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् 23 वर्ष की अवस्था में ही उन्हें पार्लियामेंट में स्थान मिल गया, बाद में वह लार्ड चांसलर भी बने।

बेकन अपने छात्र जीवन से ही अरस्तू के दर्शन के आलोचक बन गए थे। वह प्राचीनतावाद के घोर विरोधी थे। उन्होंने अंधविश्वासों को निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया है–जातीय अंधविश्वास, व्यक्तिगत अंधविश्वास, बाजारू अंधविश्वास और नाटक के अंधविश्वास।

उनकी दृष्टि में ''नास्तिकता व्यक्ति को विचार, दर्शन, स्वाभाविक निष्ठा, नियम पालन और यश की ओर ले जाती है; ये सभी चीजें सतही नैतिक गुण की पथप्रदर्शिका हो सकती हैं।''

गैलीलियो गैलिलाई – (1564–1642 ई.)



इटली के महान खगोलज्ञ, गणितज्ञ और भौतिकविद् गैलीलियो का जन्म पीसा में हुआ था। उन्होंने अनेक वैज्ञानिक उपकरणों का निर्माण किया और कई नियमों के प्रणेता बने, उन्होंने फ्लोरेंस के निकट एक गांव में निष्कासित जीवन व्यतीत किया और 1637 के बाद वह अंधे हो गए थे। उनका कथन है–

''हमारे वाद–विवाद से दर्शन को लाभ पहुंचता है क्योंकि यदि हमारी धारणाएं सत्य सिद्ध होती हैं तो नई उपलब्धियां सामने आएंगी; यदि गलत होती हैं तो आगे चल कर उनकी भर्त्सना से मौलिक सिद्धांतों की पुष्टि होगी।''

स्पिनोजा (1632–1677 ई.)

बारुच दे–स्पिनोजा हालैंड में एक धनी यहूदी परिवार में पैदा हुए थे। वह धार्मिक अंधविश्वासों के विरोधी थे। स्पिनोजा के धर्मविरोधी विचारों में नाराज होकर धर्माचार्यों ने 1656 में उन्हें धर्म से बहिष्कृत कर दिया। इधर–उधर धक्के खाते हुए स्पिनोजा अमस्टर्डम छोड़ कर 1669 में हाग में बस गए और चश्मे के पत्थरों को घिसघिस कर जीविकोपार्जन करने लगे। सदियों तक स्पिनोजा को नास्तिक समझा जाता रहा। वह पहले दार्शनिक थे जिस ने मध्यकालीन लोकोत्तरवाद तथा धार्मिक रूढ़िवाद का खंडन करते हुए बुद्धिवाद और प्रकृतिवाद का समर्थन किया।

बेंजामिन फ्रैंकलिन (1706–1790 ई.)

बेंजामिन फ्रेंकलिन का जन्म बोस्टन में हुआ था। उन्होंने अनेक सरकारी पदों पर कार्य किया। उनके अनुसार ''धर्म के

माध्यम से देखने का तरीका बुद्धि की आंख (प्रज्ञाचक्षु) को बंद कर देता है।''

''गिरजाघरों की अपेक्षा प्रकाशगृह अधिक सहायक होते हैं।''

''सांसारिक प्रपंचों (मामलों) में मनुष्य धर्म से नहीं, बल्कि इसके न होने से सुरक्षित है।''

डेविड ह्यूम (1711-1776 ई.)

स्काटलैंड निवासी डेविड ह्यूम पैरिस स्थित राजदूत के सेक्रेटरी तथा स्काटलैंड में सहायक राजमंत्री रहे। स्वतंत्र तथा प्रगतिशील विचारों वाले डेविड ह्यूम ने 25 वर्ष की उम्र तक ईसाई धर्म का गहन अध्ययन कर लिया था और वह उसमें व्याप्त परंपरागत अंधविश्वासों के कटु आलोचक बन गए थे।

ह्यूम से पूर्व मध्ययुग के दार्शनिक संतों और आधुनिक युग के देकार्त, स्पिनोजा, लाइबनित्ज आदि ने विभिन्न प्रमाणों के जरिए ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने का प्रयास किया था। ह्यूम ने उन समस्त प्रमाणों का जोरदार खंडन किया और कहा कि ईश्वर की सत्ता, उस का रूप, गुण आदि मानवीय बुद्धि के विषय नहीं बन सकते। उन्होंने इसी प्रकार आत्मा के अस्तित्व पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया।

इस संदर्भ में ह्यूम की चर्चित पुस्तक हैं-'डायलॉग्स कंसर्निंग नेचुरल रिलीजन'।

ह्यूम ने कानून का अध्ययन किया था। वह पहले जनरल सेंटक्लेयर और बाद में हेलार्ड हटफोर्ड के सचिव भी रहे अंत में, 1767-69 में वह इंग्लैंड के अंडर सेक्रेटरी (उप मंत्री) भी बने।

जान एडम्ज (1735-1826 ई.)

जान एडम्ज का जन्म मास प्रांत के क्विंसी नगर में हुआ था। उनका विचार है-

''ईसा मसीह के देवत्व को, बेतुकेपन के लिए, एक सुविधाजनक आड़ बना दिया जाता है।''

''किसी भी माने में संयुक्त राज्य की सरकार ईसाई धर्म पर स्थापित नहीं की गई है।''

थामस पैने- (1737-1809 ई.)

अमरीकी लेखक और अमेरिकी क्रांति की महत्त्वपूर्ण हस्ती थामस पैने का विचार है कि-

''सभी धार्मिक संस्थाएं चाहे वे जिस समुदाय से संबंध रखती हों, मुझे मानव कल्पना से अधिक कुछ नहीं लगती हैं। ये धार्मिक संस्थाएँ मानव जाति को गुलाम बनाती हैं और लोगों में भय पैदा करती हैं। इन धार्मिक संस्थाओं का शक्ति और लाभ पर एकाधिकार होता है।''

थामस जेफर्सन (1743-1826 ई.)

अमेरिका के तीसरे राष्ट्रपति, लेखक, वैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्री, कूटनीतिज्ञ और वास्तुकार, देववादी, उत्सुक अलगाववादी का जन्म अल्बेमार्ले, काउंटी, बर्जिनिया में हुआ था। वह विलियम और मेरी से 1762 में स्नातक हुए। उनके अनुसार-

''जब से ईसाई धर्म की स्थापना हुई तब से लाखों भोलेभाले पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को जलाया, सताया, दंडित और कैद किया जा चुका है, फिर भी हम समानता की ओर एक इंच भी नहीं बढ़े हैं। जबरदस्ती का क्या प्रभाव हुआ है ? आधे संसार को मूर्ख और आधे को पाखंडी बनाना, मेरा मानना है कि इतिहास में ऐसे पुरोहितवादी लोगों का एक भी उदाहरण नहीं मिलता जिन्होंने स्वतंत्र सरकार चलाई हो। इससे निम्नतम श्रेणी का अज्ञान प्रकट होता है, इस अज्ञान के कारण जननेता और धार्मिक नेता अपने स्वार्थों की पूर्ति करेंगे।''

''हर देश और हर युग में पुरोहित स्वतंत्रता के शत्रु रहे हैं। वे सदैव तानाशाह के संपर्क में होते हैं और पौराणिक कथाओं की सुरक्षा के बदले उसे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने के लिए उकसाते हैं।''

''ईश्वर एक ऐसा तत्त्व है जिस के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते हैं। जब तक इस विस्मयकारी ईशनिंदा (ईशप्रशंसा) से छुटकारा न मिले तब तक इस संसार में कभी कोई उदार विज्ञान (सोच) नहीं होगा।''

लाप्लास (1749-1827 ई.)

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन धार्मिक अंधविश्वासों से ग्रस्त हो कर ग्रहों की स्थिति एवं गति संबंधी अनियमितताओं की सटीक व्याख्या नहीं कर सका और इस का दायित्व ईश्वर पर डालता रहा। न्यूटन की इन कमियों को लाप्लास ने दूर किया। लाप्लास ने ईश्वर के हस्तक्षेप के बिना ही ग्रहों के भ्रमण तथा उनकी गति की अनियमितताओं के निराकरण की व्याख्या की। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि ग्रहों की अनियमितताएं प्राकृतिक नियमों के आधार पर स्वत: दूर हो जाती हैं। इस में ईश्वर कोई हस्तक्षेप नहीं करता।

न्यूटन के विपरीत वह मानते थे कि ग्रहों की रचना ईश्वर ने नहीं की और न ही वह उन का संचालन करता है।

जेम्स मैडिसन (1751-1836 ई.)

चौथे अमेरिकी राष्ट्रपति और राजनेता का जन्म पोर्ट कानवे, वर्जीनिया में हुआ था। उन्होंने प्रिंसटन में से स्नातक किया। उनके अनुसार-

''लगभग 15 शताब्दियों तक ईसाई धर्म की वैधानिक स्थापना की परख हो चुकी है। इस का क्या फल हुआ ? हर जगह कम या ज्यादा मात्रा में, पुरोहित वर्ग में घमंड और अकर्मण्यत, याजक वर्ग (जनसाधारण) में अज्ञान और चापलूसी,

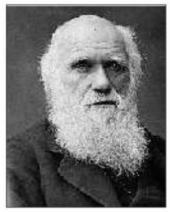
पुरोहित और याजक दोनों वर्गों में अंधविश्वास, धर्मांधता और उत्पीड़न आदि बुराइयों ने समाज को जकड़ रखा।''

''कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि गिरजाघर लोगों की स्वतंत्रता के संरक्षक रहे हों।''

''धार्मिक बंधन दिमाग को कमजोर बनाता है और उसे बेड़ियों में जकड़ रखता है तथा उसे हर अच्छे कार्य के अयोग्य बना देता है।''

चार्ल्स डारविन (1809-1882 ई.)

श्रूयज बेरी में जन्मे और एडिनबर्ग व कैंब्रिज में शिक्षित चार्ल्स डारविन ने ईश्वरवाद को सर्वाधिक चोट पहुंचाई। उन्होंने बड़े ही प्रबल तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि यह विश्व किसी कथित ईश्वर की संरचना नहीं है। यह स्वत: रचित एवं स्वत: संचालित है। सृष्टि क्रमिक विकास का परिमाम है। एक जीव का दूसरे जीव के रूप में विकास हुआ है।



इस संदर्भ में डारविन के विस्तृत विचार उनकी पुस्तक- 'ओरिजिन ऑफ स्पीशीज' तथा 'डिसेंट ऑफ मैन' में मिलते हैं। डारविन ने लगभग 30 वर्षों तक विभिन्न प्राणियों की जातियों के विकास का अध्ययन किया था। उन के विकासवादी सिद्धांत मुख्यत: दो अवधारणाओं-' प्राकृतिक चुनाव' और 'योग्यतम की उत्तरजीविता'-पर आधारित है।

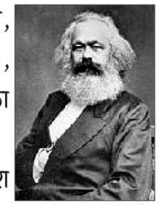
डारविन के अनुसार पृथ्वी पर जीव का उद्गम कुछ विशेष परिस्थितियों के फलस्वरूप हुआ और फिर धीरे-धीरे करोड़ों वर्षों में अपने प्राकृतिक वातावरण के अंतर्गत भोजन तथा निवास के लिए एक दूसरे के विरुद्ध सतत संघर्ष के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के प्राणियों की जातियों का विकास हुआ, जिस के मूलाधार थे 'प्राकृतिक चुनाव' और 'योग्यतम की उत्तरजीविता'। इस ने जीव विज्ञान में विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

''मैं किसी रहस्योद्घाटन में विश्वास नहीं करता, जैसे आगामी जीवन के बारे में, हर आदमी को परस्पर विरोधी अस्पष्ट संभावनाओं के बीच खुद ही निर्णय लेना चाहिए।''

कार्ल मार्क्स (1818-1883 ई.)

मार्क्स का जन्म जर्मनी के नगर राइनलैंड में 1818 में हुआ। वह यहूदी परिवार में जनमे, पर उन का परिवार धार्मिक रूढ़िवाद और अंधविश्वासों से मुक्त था। अत: उनका धार्मिक विरोध, धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध प्रतिक्रिया नहीं था। उनका धार्मिक विरोध उन के अपने जीवन के कटु अनुभवों तथा मौलिक चिंतन का परिणाम था। वह शुरू से ही धर्मविरोधी रहे।

मार्क्स के अनुसार ईश्वर का जन्म एक गहरी साजिश से हुआ है। उनकी दृष्टि में धर्म विज्ञान विरोधी, प्रगति विरोधी, प्रतिगामी, अस्वास्थ्यकर, अनुपयोगी, अनावश्यक और गर्हित है। इसका त्याग ही जनहित है।



ईश्वर की कल्पना और धर्म के उपदेश सामंतवादी, पूंजीवादी तथा अधिनायकवादी व्यवस्था तथा राजतंत्र के हित में सोद्देश्य प्रचारित उपदेश है। इन के माध्यम से जनता को गुमराह करने का प्रयत्न किया जाता है।

दयानंद (1824-1883 ई.)

गुजरात के काठियावाड़ में 1824 में जनमे दयानंद का बचपन का नाम मूलशंकर था। बचपन में दयानंद परम भक्त थे। बाद में उन्होंने मूर्तिपूजा का जम कर खंडन किया और 10 अप्रैल, 1875 को बंबई (मुंबई) में आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने वेदों की व्याख्या अपनी तरह से की।

फलित ज्योतिष, पौराणिक क्रियाकलाप, व्रतकथा, गरुड़पुराण, दसवां, तेरहवीं, श्राद्ध आदि को पोपलीला ठहराया। तीर्थयात्रा, नदी स्नान के कथित महाफलों को कोरी ठगविद्या और पंडे पुजारियों की जालसाजी व लूट-खसोट बताया।

फ्रेडरिक नीत्से (1844-1900 ई.)

जर्मनी दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्से का जन्म लूटजन के पास सेक्सोनी में हुआ था। उन्होंने बोन और लेपिंजग विश्वविद्यालयों से शिक्षा ग्रहण की। नीत्से की दृष्टि में,

''ईसाई धर्म में नैतिकता और धर्म का सत्य से किसी भी प्रकार से मेल नहीं है, मैं ईसाई धर्म को एक महान् अभिशाप, एक बड़ी आंतरिक चरित्रहीनता प्रतिशोध की एक प्रवृत्ति कहता हूँ, इस के लिए कोई भी साधन अत्यधिक विषैला, गूढ़, भूमिगत और बहुत छोटा नहीं होता है। मैं इसे मानव जाति का कभी न मिटने वाला कलंक कहता हूं। क्या यह मनुष्य की भयंकर भूल है या फिर ईश्वर की भयंकर भूल है या फिर ईश्वर मनुष्य की ?''

थामस एडीसन (1847-1931 ई.)

अमेरिकी आविष्कर्त्ता थामस एडीसन का जन्म ओहियो के मिलान कस्बे में हुआ था। उन्होंने अनेक वैज्ञानिक उपकणों का निर्माण किया। उनके अनुसार-''किसी ईश्वर या किसी व्यक्ति के आगामी जीवन का, स्वर्ग और नरक की धार्मिक कल्पना का मैंने कभी थोड़ा सा भी वैज्ञानिक प्रमाण नहीं पाया है।''

''मैं नहीं मानता हूँ कि संयुक्त राज्य के पब्लिक स्कूलों में किसी तरह के धर्म को चलाना चाहिए।''

''जहां तक आज के धर्म का संबंध है, यह एक घृणित कपट है... धर्म पूरी तरह से मूर्खतापूर्ण है।''

(स्रोत: पुस्तक ''तर्क से काटिए अंधविश्वासों का जाल'' संपादक राकेश नाथ)

महान क्रांतिकारी और मार्क्सवादी लेखक सव्यसाची

मुनेश त्यागी

प्रोफेसर श्यामलाल वशिष्ठ को लोग इस नाम से कम ही जानते हैं,वे ''सव्यसाची'' नाम से प्रसिद्ध हुए और आज अधिकांश लोग उन्हें इसी नाम से जानते हैं। उन्होंने कई वर्ष तक बी.एस.ए कॉलेज मथुरा में अध्यापन किया। अपनी सीधे, सच्चे और किसानों, मजदूरों और जनता से जुड़े लेखन के कारण, वे छात्र-छात्राओं और शिक्षकों के दिलो-दिमाग पर छा गए थे। 17 दिसंबर 1997 को उनकी पुण्यतिथि थी। उनका जन्म 10 जुलाई 1932 को हुआ था।

सव्यसाची एक साधारण व्यक्तित्व के धनी थे। वे मोटे गाढ़े कपड़े और टायर की चप्पल पहनते थे। बेहद साधारण व्यक्ति थे। उनकी वेशभूषा को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वे एक उच्च कोटि के लेखक और प्रोफेसर हैं। वे एक साधारण से घर में रहते थे। वे एक व्यक्ति नही, बल्कि एक महान संस्था थे। मार्क्सवाद के चितेरे थे। उन्होंने मार्क्सवाद को साधारण हिंदी में लिखा और मार्क्सवाद के विचारों से, उसके सिद्धांतों से, लाखों किसानों, मजदूरों, नौजवानों, विद्यार्थियों और जनता को जिस तरह से अवगत कराया, परिचित कराया, उसे लेकर उनका कोई सानी नहीं था। अपने लेखन के कारण वे अपने जीवन में ही किंवदंती बन गए थे। अपने छात्र-छात्राओं, शिक्षकों के और अपने शिष्यों के तो वे सम्मानीय थे ही, मगर उनकी खूबी यह थी कि अपनी लेखनी से, अपनी बातों से, अपने विचारों से, अपने कमाल के व्यक्तित्व से, वे अपने विरोधियों को, अपने दुश्मनों को भी अपना मित्र बना लेते थे। यह उनकी कमाल की खूबी थी। उन्होंने अपने लेखन से वामपंथी आंदोलन के लिए बहुत सारे छात्र शिक्षक, कार्यकर्ता, लेखक, कवि और नेता पैदा किए हैं।



उनके जीवन में, शायद ही कोई उनका दुश्मन हो, क्योंकि उनका लेखन इतना विराट था कि सामने वाला उसके सामने दब जाता था। उन्होंने अपनी किताबों को छापने के लिए अपना निजी का ''युगान्तर प्रकाशन'' बनाया और इसी नाम से अपनी सारी किताबें छापीं। उनकी पुस्तकें ज्ञान विज्ञान का भंडार थीं। उनकी किताबें इतनी सस्ती थी कि दुनिया का कोई भी आदमी, गरीब से गरीब आदमी भी उन्हें खरीद पाने में सक्षम था। उनकी एक और सबसे बड़ी खूबी थी कि वे अपने लेखकों, कवियों, मित्रों और कॉमरेडों का पत्राचार द्वारा दिग्दर्शन किया करते थे। उनकी कमियों को इंगित किया करते थे, उनकी अच्छाइयों को बताया करते थे और इस प्रकार उन्हें अच्छा लेखन और कविता करने के लिए हौंसला देते थे और दिशा देते रहते थे। यह उनकी बहुत बड़ी खूबी थी।

उनकी किताबों का मूल्य जैसे 20 पैसे, 25 पैसे, 30 पैसे, 50 पैसे, 75 पैसे, 1, 2 रुपए और ज्यादा से ज्यादा 5। उनसे सस्ता साहित्य अपने जमाने में किसी ने नहीं लिखा। उनकी प्रसिद्धि का एक कारण यह भी था क्योंकि उन्होंने अपने लेखन को पैसा कमाने का जरिया नहीं बनाया बल्कि मार्क्सवाद को प्रचारित प्रसारित करने के लिए एक जरिया बनाया था। वे सस्ते साहित्य के जरिए, समाज में क्रांतिकारी, जनवादी, मार्क्सवादी और समाजवादी परिवर्तन लाना चाहते थे, समाज की क्रांतिकारी कायाकल्प करना चाहते थे। जहां सबको रोटी मिले, शिक्षा मिले, स्वास्थ्य मिले, रोजगार मिले। जहां भूख, गरीबी, अन्याय, शोषण, जुल्म और भेदभाव का हमेशा हमेशा के लिए खात्मा कर दिया जाए।

लोग उन्हें आज भी 'मास्साब' कहकर याद करते हैं। सव्यसाची उत्तर प्रदेश जनवादी लेखक संघ के प्रांतीय सचिव रहे, केंद्रीय कमेटी के उपाध्यक्ष रहे। उनकी पुस्तकों का संसार भी कमाल का है। उनकी मुख्य पुस्तकों में 1. समाज को बदल डालो, 2. यह सब क्यों?, 3. कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं?, 4. R.S.S. को जानिए, 5. गांव के गरीबों से, 6. नौजवानों से, 7. मार्क्स विशेषांक, 8. सांप्रदायिकता विशेषांक, 9. इंदिरा गांधी से दो बातें, 11. वामपंथ के अंदरूनी संघर्ष, 12. उत्तरार्ध्द मासिक पत्रिका आदि उनकी बहुत ही मशहूर पुस्तकें हैं।

जब हम आई ए एस की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे और 1980 में हमने आई ए एस की प्रारंभिक परीक्षा पास कर ली थी, तब हमारा उनकी किताबों से परिचय हुआ, वह भी एक प्रदर्शन के दौरान। हमने फटाफट उनकी तीन चार पुस्तकें खरीद लीं और उन्हें एग्जाम की तैयारी के दौरान ही पढ डाला।

उनकी किताबें पढ़कर हम उनके मुरीद हो गए और हमने उनकी पुस्तकों से ही मार्क्सवाद की ए बी सी डी जानी और मार्क्सवाद और समाजवाद का आरंभिक ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने मार्क्सवाद और समाजवाद और साम्यवाद व जनवाद को जिस तरह से साधारण जनता की भाषा में, जनता को अवगत कराया, वह कमाल का था। उनको पढ़ने के लिए किसी डिक्शनरी की या किसी बाहरी इमदाद की कोई जरूरत नहीं होती थी। वह खुद ब खुद समझ में आता चला जाता था। वे एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था थे, एक विचारधारा थे और इनका उन्होंने कभी भी पीछा नहीं छोड़ा और यह उनके साथ लगे रहे। सव्यसाची मार्क्सवादी पुरोधा थे। वे केवल लेखन तक ही सीमित नहीं थे बल्कि वह जन संघर्षों में भी भाग लेते थे, मजदूरों किसानों की मीटिंग में जाते थे, उनके जलसे और प्रदर्शनों में शामिल होते थे, उनकी मांगों का समर्थन करते थे। वर्ग संघर्ष में भाग लेने की वजह से ही उनकी किताबें और उनका लेखन और ज्यादा मारक और सजीव हो गया था।

वे अपने कार्यकर्ताओं की क्लास भी लेते थे। हमने उन्हें सबसे पहले डेमोक्रेटिक यूथ फेडरेशन ऑफ इंडिया के स्टडी सर्किल में मेरठ में देखा था। हमने सबसे पहले सव्यसाची को एक मार्क्सवादी स्कूल के प्रशिक्षण शिविर के दौरान ही देखा था। जहां पर वह अपने कार्यकर्ताओं की क्लास ले रहे थे, उन्हें मार्क्सवाद में निपुण कर रहे थे। हम भी उसी मार्क्सवादी प्रशिक्षण शिविर में शामिल थे। उन्हें मार्क्सवाद और जनवाद की ए बी सी डी सिखा रहे थे। वहीं पर उन्होंने कहा था कि जो लोग अपनी पत्नियों को मार्क्सवाद से दूर रखते हैं, मार्क्सवाद की शिक्षाओं से परिचित नहीं कराना चाहते, वे अपने जीवन में सफल मार्क्सवादी चिंतक और कार्यकर्ता नहीं हो सकते। इसलिए उन्होंने कम्युनिस्टों की पत्नियों को शिक्षित करने पर जोर दिया था।

जब वे मेरठ में अपने कार्यकर्ताओं की क्लास ले रहे थे तो भोजन के दौरान उन्होंने पूछा कि यह इतना स्वादिष्ट भोजन किसने बनाया है, तो हमारे साथियों ने बताया कि यह भोजन नसीम और सुनीता त्यागी ने बनाया है। नसीम कॉमरेड तोसिफ अली खान की पत्नी थी और सुनीता त्यागी मेरी पत्नी थी। तो उन्होंने पूछा कि इन दोनों को क्लास में क्यों नहीं बिठाया गया है? उन्होंने इस पर एतराज किया और कहा कि कल ये दोनों हमारी क्लास में शामिल होंगी और रोटी नहीं बनाएंगीं। इस तरह उन्होंने हमारी पत्नी को अपनी क्लास में शामिल कर लिया

इसी प्रकार अगले दिन हमारी पत्नी भी सव्यसाची के प्रशिक्षण शिविर में शामिल हो गई थी और उन्होंने मोटे रूप में मार्क्सवाद की ए बी सी डी यहीं हासिल की थी और इसी शिक्षा के कारण आज तक वे हमारी कामरेड जीवन संगिनी बनी हुई हैं। मार्क्सवाद की लड़ाई में, जीवन के संघर्षों और देश के संघर्षों को आगे ले जाने में रोज हमारी मदद करती हैं, हमारा साथ देती हैं। यह कामरेड सव्यसाची की हमारे परिवार को, हमारे जीवन को, हमारे जीवन दर्शन को, हमारी वैचारिक लड़ाई को सबसे बड़ी देन है। हम उनके इस क्रांतिकारी योगदान को कभी भी नहीं भूल सकते हैं।

आज हम जो कुछ हैं, कामरेड सव्यसाची की शिक्षा, उनकी प्रेरणा और उनकी किताबों की वजह से हैं। वह हमारे सबसे बड़े और सबसे पहले राजनीतिक गुरु हैं। आज भी हम उनकी किताबों को दोहराते रहते हैं। उनकी किताबों का संसार बहुत सुंदर है। लोगों को हम सलाह देंगे कि जहां कहीं भी मिलें, उनकी किताबें जरूर पढ़नी चाहिए। उनको मार्क्सवाद पढने के साथ ही साथ समझ में आता चला जाएगा। उनके अंदर क्रांति और समाजवाद की, भाईचारे की, समता समानता की, लौ जागृत होती चली जाएगी।

सब्यसाची इंडिया के मार्क्सवाद के हिंदी लेखकों में सर्वोच्च स्थान रखते हैं। आज भी उनका कोई सानी नहीं है। आज हमें पुनः मार्क्सवाद को सीधी और सच्ची भाषा में लिखने के लिए हजारों सव्यसाचियों की जरूरत है। हम तो उन्हीं से सीख कर, उनकी शिक्षा को आगे बढ़ाते हुए जनवादी लेखन में लगे हुए हैं और आज हालत यह हो गई है कि जब तक मार्क्सवाद के प्रचार प्रसार के लिए रोजाना कुछ लेखन न कर लें, हमें अच्छा नहीं लगता है और हमें खाने का मन भी नहीं करता है। इसका श्रेय सबसे ज्यादा कामरेड सव्यसाची को ही जाता है। आज भी वे हमें पल पल पल याद आते हैं और यही हाल उन सब का है जिन्होंने सव्यसाची की किताबें पढ़ी हैं, उनके बातचीत की है, उनके विचार जाने हैं। इस अन्यायी और लुटेरे पूंजीपति और सामंती समाज को बदलने के लिए, आज पुनः सव्यसाची के लेखन को पढ़ने की बहुत जरूरत है। ऐसे महान मार्क्सवादी लेखक को शत शत नमन वंदन और अभिनंदन और हम यही कहेंगे कि...

स्याह रात में रोशन किताब छोड़ गया
चला गया मगर अपने ख्वाब छोड़ गया।
हजार जब्र हों लेकिन यह बात है अटल
वो जहन–जहन में इंकलाब छोड़ गया।

गदर पार्टी

–प्रीतम सिंह पंछी

आर्थिक संकट का शिकार होकर भारतीय, विशेषतः पंजाबी किसान, विदेशों को जाने के लिए मजबूर हुए थे। वहाँ उन्हें जो कड़ुवा अनुभव हुआ, उसने उनके दिलों में क्रान्तिकारी भावना को जन्म दिया। और वे अपनी सारी मुसीबतों की जड़–पराधीनता को अपने कन्धों से उतार फेंकने के लिए संघर्षशील दिखाई देने लगे।

पहले षड्यन्त्र केस के फैसले में यह बात स्पष्ट तौर से मानी गई है कि सन् 1913 के आरम्भ में उत्तरी अमेरिकी द्वीप के पश्चिमी किनारे की रियासतों (Pacific Coast States) में कुछ जोशीले तत्त्व मौजूद थे। वही तत्त्व जिन्हें लाला हरदयाल ने 1913 में सुलगाना शुरू किया था। सर माईकल ओडायर ने भी लिखा–

''लाला हरदयाल सन् 1911 के आरम्भ में अमेरिका आया, और उसने वर्कले, कैलीफोर्निया में अपना आसन जमा लिया। जहाँ पर आबाद भारतीयों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की जड़ पहले से ही मौजूद थी। लाला हरदयाल को क्षेत्र तैयार मिला।''

अमेरिका–कनाडा गए अंग्रेज विरोधी इन भारतीय तत्त्वों ने गदर पार्टी आन्दोलन का रूप कैसे धारण किया, इसके सम्बन्ध में कई भ्रान्तियाँ हैं। पर हमें गदर पार्टी सम्बन्धी चले मुकदमों से इसके बारे में ठीक पता चलता है। पहले मुकदमे में दर्ज है कि यह षड्यन्त्र अमेरिका के पश्चिमी किनारे से आरम्भ हुआ। वैनकोवर और सानफ्रांसिस्को इसके दो बड़े केन्द्र थे। आरम्भ में वैनकोवर केन्द्र था, पर अन्त में सानफ्रांसिस्को ने इसके महत्त्व को कम कर दिया।

ऐसे ही समय लाला हरदयाल सानफ्रांसिस्को पहुँचा। लगता है कि वह 1912 के अन्त या 1913 के आरम्भ में पहले–पहल सानफ्रांसिस्को पहुंचे और इस शहर में नास्तिकता पर भाषण दिए। उसके भाषण में परमानन्द और ठाकुरदास मौजूद थे।

उसके सानफ्रांसिस्को आने का परिणाम यह हुआ कि उसके श्रोताओं में राजनीतिक विचार भरे गए....

राजद्रोह की आग धीरे–धीरे कैलीफोर्निया और ऑरगन में फैलने लगी।

पहला परिणाम यह हुआ कि आस्टोरिया (ऑरगन) में सन् 1912 के अन्त या 1913 के आरम्भ में 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन' स्थापित की गई। एक सभा में मुंशीराम, करीमबख्श, नवाबखान, केसर सिंह, बलवन्त सिंह और करतार सिंह ने भाषण दिए। केसर सिंह को प्रधान और बलवन्त सिंह को मन्त्री चुना गया।

'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन' के उद्देश्य निम्नलिखित थे–

1. भारत से देशी भाषाओं के पत्र मँगवाने का प्रबन्ध करना;

2. भारत से अमेरिका में विद्याध्ययन के लिए नवयुवकों को बुलाना, ताकि वे राष्ट्र–सेवा के लिए तैयार हो सकें।

3. राजनीतिक विचार–गोष्ठियों का आयोजन करना।

इसका परिणाम यह हुआ कि सदस्य अपने देश के बारे में सोचने लगे।

न सिर्फ आस्टोरिया में ही इस प्रकार की सोसाइटी स्थापित हुई बल्कि पोर्टलैण्ड (ऑरगन) में एक इण्डियन एसोसिएशन भी काम करती थी। इससे स्पष्ट है कि सन् 1913 के आरम्भ में पश्चिमी किनारे की रियासतों में क्रान्तिकारी जोश के चिन्ह मौजूद थे। लाला हरदयाल के अमेरिका–आगमन की बात जब सारे भारतीयों में फैलने लगी तो बालिराम, रामरखा, ठाकुरदास और अमर सिंह आदि ने मई, 1913 में लाला हरदयाल को सेंट जॉन आने का निमन्त्रण दिया। ऑरगन स्टेट में लाला हरदयाल की यात्रा का यह आरम्भ था। वह भाई परमानन्द के साथ वहाँ पहुँचे। भाई परमानन्द तो लौट गए, पर लाला हरदयाल सात दिन सेंट जॉन रहे, जहाँ उन्होंने भाषण दिए और 'ग़दर' नाम का पत्र निकालने का सुझाव रखा। तत्पश्चात् लाला हरदयाल ब्राईडलवेल (ऑरगन) गए। वहाँ एक सभा में पत्र निकालने का सुझाव रखकर सात–आठ सौ डालर चन्दा भी इकट्ठा किया।

अगले दिन वह सेंट जॉन लौट आए। लिंटन, पोर्टलैण्ड और आस–पास के शहरों से भारतीयों की एक सभा बुलाई गई। चन्दा इकट्ठा हुआ। सानफ्रांसिस्को से पत्र निकालने का निर्णय किया गया। सेंट जॉन, लिंटन और ब्राडलवेल में

चन्दा इकट्ठा करने के लिए समितियाँ कायम की गईं।

'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन' ने लाला हरदयाल को आस्टोरिया लाने के लिए करीम बख्श और केसर सिंह को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। वे लाला हरदयाल और बाबा सोहन सिंह भकना को साथ लेकर आए।

आस्टोरिया में एक महत्त्वपूर्ण सभा की गई, जिसमें लाला हरदयाल और रामचन्द्र ने भाषण दिए। दोनों ने भारत से अंग्रेजी सरकार को खदेड़ने पर बल दिया। चन्दा एकत्र किया गया। सानफ्रांसिस्को से 'गदर' अखबार निकालने का पक्का फैसला किया गया। क्रान्तिकारियों की संस्था का नाम 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन ऑफ दी पैसिफिक कोस्ट' और प्रेस का नाम 'युगान्तर प्रेस' रखा गया। यह भी निर्णय किया गया कि भारत तथा दूसरे देशों में 'गदर' अखबार मुफ्त बाँटा जाए। उसी शाम को प्रीतिभोज हुआ, जिसमें लाला लाजपतराय और दूसरों का क्रान्तिकारी साहित्य बाँटा गया। प्रीतिभोज के बाद, लाला हरदयाल ने कई प्रमुख भारतीयों से बातचीत की। 1907 के प्रसिद्ध बागी सरदार अजीत सिंह को अमेरिका लाने के लिए चन्दा इकट्ठा किया गया।

गदर पार्टी के पहले प्रधान बाबा सोहन सिंह भकना के अनुसार 'हिन्दी एसोसिएशन' बाद में गदर पार्टी के नाम से प्रसिद्ध हो गई। पण्डित जगतराम भी पहले षड्यन्त्र केस के अपने बयान में मानते हैं कि 'गदर' अखबार के नाम को लेकर ही वहाँ के लोगों ने गदर पार्टी का नाम दे दिया, जो हमने भी सुविधाजनक समझते हुए मान लिया–पहले षड्यन्त्र केस के फैसले से यह स्पष्ट है कि गदर अखबार और गदर आन्दोलन की अन्य कार्रवाइयाँ 'हिन्दी एसोसिएशन ऑफ दि पैसिफिक कोस्ट' चलाती थीं।

'गदर' ने स्वयं भी लिखा कि संघर्ष की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अखबार निकाले जाएँ। पुस्तकें छपवाकर भारत में भेजी जाएँ, फौजी कवायद सीखी जाए और विदेशी कौमों से सहायता के लिए अपील की जाए। इसी उद्देश्य को लेकर 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन ऑफ दी पैसिफिक कोस्ट' संस्था स्थापित की गई है जिसकी पोर्टलैण्ड, आस्टोरिया, सेंट जॉन, सेकरेमैण्टो, सराक्टन, ब्राइटलवेल और अन्य स्थानों पर शाखाएँ हैं। 'गदर' अखबार से ही यह बात स्पष्ट होती है कि आन्दोलन वह संचालन करने वाली 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन ऑफ दी पैसिफिक कोस्ट' थी। सानफ्रांसिस्को मुकदमे में लिखा है कि जब हरदयाल अमेरिका छोड़ गया तो उस समय जापान में रह रहे भगवान सिंह तथा मौलवी बरकतुल्ला सानफ्रांसिस्को आए और उन्होंने रामचन्द्र के साथ मिलकर गदर पार्टी का चार्ज ले लिया। भगवान सिंह को प्रधान और मौलवी बरकतुल्ला को उपप्रधान चुना गया।

पंजाब के पुलिस अधिकारियों के गदर सम्बन्धी लिखे सरकारी समाचार के शुरू में ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि यह आम प्रचलित धारणा निर्मूल है कि लाला हरदयाल के दिल में यूरोप जाकर देश–भक्ति की भावना जगी। लाला हरदयाल के जो कागज़–पत्र सी. आई. डी. के हाथ लगे उनसे जाहिर होता है कि कम–से–कम सन् 1905 से उन्होंने अपने लिए क्रांति का मार्ग चुन लिया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमेरिका जाने से पहले ही लाला हरदयाल के दिल में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध घृणा के बीज बोए जा चुके थे।

पंजाब पुलिस के अधिकारियों की गदर षड्यन्त्र सम्बन्धी लिखित रिपोर्ट के अनुसार लाला हरदयाल जनवरी, 1911 तक मार्टनीक नाम के द्वीप (वेस्टइण्डीज) में रहे। फरवरी, 1912 में सटेनफोर्ड (कैलीफोर्निया) यूनिवर्सिटी में भारतीय दर्शन तथा संस्कृत के प्रोफेसर नियुक्त किए गए। लेकिन इसी वर्ष सितम्बर में इस पद से त्यागपत्र देकर बर्कले आ गए। ऐसा लगता है कि वह आरम्भ में विद्यार्थियों के क्लब कायम करने, अराजकता सम्बन्धी भाषण देने और सारे भारतीयों में, विशेषकर नवयुवकों में, बगावत फैलाने में लग गए। सन् 1913 में अमेरिका–भर में बिखरे पड़े भारतीय श्रमिकों की ओर ध्यान दिया और उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध उकसाना शुरू कर दिया।

सटेनफोर्ड यूनिवर्सिटी में लाला हरदयाल के विचारों में एक नया परिवर्तन आया। वह समाजवाद तथा साम्यवाद की ओर झुक गए और फिर जल्दी ही अराजकता की ओर। यूनिवर्सिटी के भीतर और बाहर लाला हरदयाल ने विवाह, जायदाद और संगठित सरकार के विरुद्ध प्रचार शुरू कर दिया। यूनिवर्सिटी के प्रबन्ध के लिए उनकी ये गतिविधियाँ कैसे सहन होतीं ? लाला हरदयाल को नौकरी छोड़ देने के लिए मजबूर होना पड़ा। फिर वह सानफ्रांसिस्को आ गए, जहाँ पर उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों को अपने विचारों का बना लिया और पंजाबी जनता के साथ घनिष्ठता बढ़ानी शुरू

कर दी।

सितम्बर, 1912 में सटेनफोर्ड यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर–शिप छोड़ने से लेकर मई, 1913 की ऑरगन स्टेट की यात्रा तक, बीच के समय में लाला हरदयाल के विचारों तथा सरगर्मियों का स्पष्ट पता नहीं चलता। भाई परमानन्द ने यह तो बताया था कि लाला हरदयाल के विचार अराजकतावाद की ओर झुक रहे थे। पर यह खोलकर नहीं लिखा कि लाला हरदयाल ने भारतीय विद्यार्थियों को अपने विचारों के अनुसार बनाने और भारतीय श्रमिकों के साथ मेलजोल बढ़ाने का प्रयत्न अराजकतावाद के ध्येय की पूर्ति के लिए कैसे किया। लाला हरदयाल के पिछले जीवन और अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध उनकी गहरी उमंग को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका झुकाव भले ही समाजवाद या साम्यवाद की ओर था या अराजकतावाद की ओर; पर जब भी उनके विचार राजनीति की ओर मुड़े तो इनकी तह में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध गहरी घृणा रही। और वास्तव में उनकी रुचि अंग्रेजी साम्राज्य पर चोट करने के लिए क्रान्ति का मार्ग ढूँढने की दिखाई देती है।

सितम्बर, 1912 और मई, 1913 के बीच के सात–आठ महीने ऐसे हैं कि लाला हरदयाल के विचारों तथा सरगर्मियों की कोई स्पष्ट तस्वीर नहीं मिलती। इससे यही सिद्ध होता है कि उन्हें इस दौरान अपने उद्देश्य में कोई ठोस सफलता नहीं मिली, जो सरकार और लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती। आगे चलकर अमेरिका के भारतीयों के अत्यधिक उत्साह ने लाला हरदयाल को निडर होकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया। लाला हरदयाल ने उनकी नब्ज को भाँपकर उनकी भावनाओं के अनुसार क्रान्तिकारी कार्यक्रम पेश किया।

गदर पार्टी की स्थापना के सम्बन्ध में यह बात बिल्कुल ठीक है कि अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध उमंग का जो फल पक चुका था, वह लाला हरदयाल के छूते ही उनकी झोली में आ गिरा। गदर पार्टी के समूचे विकास की ओर देखते हुए यह बात स्पष्ट है कि कनाडा–अमेरिका के भारतीयों के राष्ट्रीय उभार ने इन आन्दोलनों का रूप धारण कर लिया। हरनाम सिंह 'टुण्डीलाट' से एक ऐसी घटना का पता चला है जो इतिहास में कहीं नहीं लिखी गई। इस घटना से उस समय अमेरिका में बसे भारतीयों के अंग्रेज सरकार के विरुद्ध जोश का पता चलता है। जब लाला हरदयाल ने ऑरगन स्टेट का दौरा करते समय एक स्थान पर अंग्रेजों को निकाल बाहर करने और इसी उद्देश्य को लेकर एक अखबार निकालने का सुझाव रखा, तो एक भारतीय ने उठकर कहा कि अखबार निकालने में समय क्यों खोते हो? बात तो हम समझ ही गए हैं। जहाज पर चलते हैं। चलो चलें, और अपने देश से अंग्रेज़ों को निकालें।

गदर पार्टी आन्दोलन के लिए की गई लाला हरदयाल की सेवाएँ असाधारण हैं और स्वातंत्र्य संग्राम के इतिहास में उनका स्थान सुरक्षित है।

'भारत जाने का अभिप्राय' शीर्षक के अन्तर्गत पहले षड्यन्त्र केस में लिखा है–

''क्रान्तिकारियों के स्वराज्य की 'गदर' अखबार ने स्पष्ट व्याख्या की है ''काफिरों को निकालकर भारत के आजाद शासक बनो ...पंचायती राज्य द्वारा खुशी प्राप्त होती है'' इस आन्दोलन का मन्तव्य यह है कि भारत के लोग गदर करें। घुन खाए वृक्ष की भांति अंग्रेजी सरकार को जड़–मूल से उखाड़कर एक राष्ट्रीय सरकार कायम करें...।''

और बाबा सोहन सिंह भकना ने मिण्टगुमरी जेल में जेलर को बताया–

''हमें हमेशा पंचायती राज्य की इच्छा रखनी चाहिए... पार्टी का बुनियादी सिद्धान्त किसी भी साधन द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना था...''

मांडवा षड्यन्त्र केस के फैसले में 'गदर' अखबार का जिक्र करते हुए लिखा गया है–

''यह अखबार अपने पहले अंक से ही खुले तौर पर बागी था। पंचायती राज्य कायम करने के लिए अंग्रेजों को भारत में विद्रोह करके जबर्दस्ती निकालने का प्रचार करता था।''

पंचायती राज्य का लक्ष्य न सिर्फ शुरू में बना लिया गया था, बल्कि इसे असली रूप देने का अन्तिम समय तक ध्यान रखा गया। पूर्व निश्चित गदर शुरू होने के समय बाँटने के लिए छापी हुई 'युद्ध की घोषणा' में लिखा था–

''अब समय है विद्रोह करने का, और अपना देश स्वतन्त्र करवाने का। मैं तुम्हें एक लड़ाई के सम्बन्ध में बता रहा हूँ, जिसकी घोषणा की गई है.... और जो समस्त भारत में फैल गई है... क्या तुम चैन से बैठ सकते

हो जबकि एक लड़ाई जारी हो ?... तुम इस लड़ाई में हमारे साथ शामिल होंगे। तुम्हें एक होना चाहिए। मौजूदा सरकार को जड़ से उखाड़ देना चाहिए और एक पंचायती राज्य स्थापित करना चाहिए।''

भारत में जब गदर के निश्चित समय से पहले रासबिहारी बोस ने सुच्चा सिंह को अम्बाला भेजा तो उसे यह हिदायत दी गई कि सूचना मिलते ही अंग्रेजी पलटनों को मारकर गदर शुरू कर दिया जाए और पंचायती राज्य की घोषणा कर दी जाए। सौ सवार वह लाहौर भेज दे, और शेष को लेकर दिल्ली जाए।

एक अर्द्ध-सरकारी अमेरिकन रिपोर्ट में भी यह माना गया है कि गदर पार्टी का मन्तव्य भारत में जनवादी राज्य स्थापित करना था।

गदर पार्टी सम्बन्धी चले मुकद्दमों में इस आन्दोलन के असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण का और भी कम जिक्र है। नवाब खान ने अपनी गवाही में बताया कि 'हिन्दुस्तानी एसोसिएशन' का लगभग वही मन्तव्य था जो बाद में बनी गदर पार्टी का था। यह समस्त भारतीयों की एकता को मुख्य मानती थी। अमेरिका से आते समय रास्ते में पीनांग और रंगून में एकता का प्रचार किया जाए। नवाबखान ने ही जिरह के उत्तर में बताया कि गदर पार्टी इस्लाम के विरुद्ध नहीं है। गदर पार्टी के सिख और मुस्लिम मेम्बर एक साथ बैठकर खाना खाते हैं और कोई एतराज नहीं किया जाता।

यह ठीक है कि अमेरिका से लौटे गदर पार्टी के सदस्य अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे और राजनीतिक दर्शन से बिल्कुल कोरे थे। पर इस रिपोर्ट से यह बात अवश्य स्पष्ट होती है कि उनका दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था। उनके हृदय में मनुष्य की भलाई की उच्च भावनाएँ भरी हुई थीं। वे अन्दर-बाहर दोनों ओर से निष्कपट थे। जो कहते थे, उस पर अमल करते थे। अमेरिका के युगान्तर आश्रम में सबका एक ही भण्डारा था। भारत लौटते समय भी बिना किसी जातीय और धार्मिक भेदभाव के खाने-पीने का एक जगह ही प्रबन्ध था।

अमेरिका से गदर पार्टी आन्दोलन में भाग लेने के लिए भारत लौटने वालों में से अधिकतर पंजाब के थे। पर अमेरिका में अन्य भारतीयों की जनसंख्या के अनुसार हिन्दू-मुस्लिम या अन्य जातियों तथा प्रान्तों के लोगों ने भाग लिया। मौलवी बरकतुल्ला गदर पार्टी के प्रसिद्ध नेता थे, जो बाद में गदर पार्टी के उपप्रधान चुने गए। पिंगले महाराष्ट्र के उत्साही नवयुवक थे। गदर पार्टी के नेताओं के जहाजों पर ही पकड़े जाने के पश्चात् भारत में गदर पार्टी आन्दोलन में काफी संख्या में बंगाली शामिल हो गए। रासबिहारी बोस इस क्रान्तिकारी ग्रुप के नेता बने। सेना में काम करते समय बिना किसी धर्म, जाति या प्रान्तीय भेदभाव के देसी पलटनों की साथ मिलाने का प्रयत्न किया गया। सिंगापुर में जिस पलटन ने गदर किया। गदर पार्टी आन्दोलन में भाग लेने का इरादा करके चार अमेरिकन भी आए, जिन्हें या तो भारत में घुसने नहीं दिया गया या फिर पकड़कर वापस भेज दिया गया। उस समय की राजनीतिक परिस्थिति के अनुसार गदर पार्टी आन्दोलन सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन था।

गदर पार्टी का कार्यक्रम

गदर पार्टी आन्दोलन की तह में जो बात छिपी थी, वह थी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से लाभ उठाना। इसके दो पहलू थे-एक तो भारत में राज कर रही विदेशी सरकार पर उस समय अन्तिम चोट करना, जब कि वह किसी बड़ी शक्ति के साथ युद्ध में उलझी हो। दूसरे, अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेज विरोधी शक्तियों की सहायता प्राप्त करना।

31 दिसम्बर, 1913 को सैकरोमैण्टो में हुई सभा में लाला हरदयाल ने कहा कि जर्मनी इंग्लैण्ड के साथ युद्ध की तैयारियां कर रहा है। भावी क्रान्ति के लिए भारत की ओर प्रस्थान करने का यही सबसे अच्छा अवसर है। इससे यह बात साफ है कि दिसम्बर, 1913 में लाला हरदयाल को जर्मनी के इरादों का भली प्रकार पता था। यह उनके विद्रोह करने के प्रयत्न तथा उस देश के साथ कुछ सम्बन्धों को जाहिर करता है।

अमेरिका ने चलते समय सानफ्रांसिस्को में 23 मार्च, 1914 को हुई सभा में लाला हरदयाल ने घोषणा की कि वह जर्मनी जाएँगे और भावी क्रान्ति की वहाँ बैठकर तैयारी करेंगे।

1914 में महायुद्ध छिड़ जाने पर मौलवी बरकतुल्ला ने नवाबखान को बताया कि अंग्रेज इस युद्ध में शामिल होने के लिए मजबूर हो जाएंगे और मिस्र, आयरलैंड, दक्षिणी अफ्रीका तथा अन्य कई देशों में विद्रोह उठ खड़े होंगे। भारत जाकर वहाँ सेनाओं को बिगाड़ने और विद्रोह करने का यह बहुत

अच्छा मौका है।

युद्ध से पहले अमेरिका में गदर पार्टी की ओर से हुई सभा के सम्बन्ध में बताते हुए पहले मुकद्दमे के फैसले में लिखा है–

''जिन सभाओं के सम्बन्ध में हमने अभी विचार किया है, इन्हीं में षड्यन्त्र के बीज बोए गए और किसी आने वाली तारीख को गदर करने का विश्वास दिलाया गया। देखने पर पता चलता है कि आन्दोलन के नेता जानते थे कि वह तारीख नजदीक ही है। इससे यह सन्देह पक्का होता है कि युद्ध छिड़ने से कुछ महीने पूर्व ही गदर पार्टी के नेताओं को जर्मनी के युद्ध आरम्भ करने के इरादे का पता चल गया था। भविष्य में एकदम विद्रोह खड़ा कर देने का विश्वास दिलाना समझ में नहीं आता।''

इसी तरह 'गदर' के 15 नवम्बर, 1913 के अंक में लिखा गया–

''हमारी आजादी के आन्दोलन के लिए जर्मनी की बड़ी सहानुभूति है, क्योंकि अंग्रेज, हमारे और उनके, दोनों के दुश्मन हैं। भविष्य में जर्मनी हमसे सहायता ले सकता है। हमारी सहायता कर भी सकता है।''

'गदर' अखबार के लेखों का निचोड़ यह था कि वह भारत जाने का प्रचार इस उद्देश्य से करता था कि अंग्रेज़ी सरकार के दुश्मनों के साथ मिलकर विद्रोह खड़ा किया जाए।

दूसरे मुकदमे के फैसले में लिखा है कि जर्मनी के साथ युद्ध छिड़ जाने को भारत में विद्रोह के लिए एक बढ़िया अवसर समझा जाता था; और यह आशा की गई कि जर्मनी इस गदर में भाग लेगा। गदर पार्टी के इरादे का साफ पता चलता है कि वह महायुद्ध में जर्मनी और अंग्रेजों के फँस जाने का लाभ उठाना चाहती थी।

भाई सन्तोख सिंह ने, जो लाला हरदयाल के अमेरिका छोड़ जाने के बाद गदर पार्टी के महामंत्री तथा गुप्त कमीशन के सदस्य नियुक्त हुए थे–सानफ्रांसिस्को के जर्मन कौंसिल के साथ मिलकर यह योजना बनाई थी कि युद्ध आरम्भ होने पर जर्मनी की सहायता से तुर्की सेनाएँ नहर स्वेज पर अधिकार कर लें, और उसमें जहाज डूबोकर, उसे बन्द कर दें। उसी समय गदर पार्टी भारत में विद्रोह खड़ा करके अंग्रेजों पर चोट करे। 'जहाने–इस्लाम' कुस्तुनतुनिया से प्रकाशित होता था। उसके 20 नवम्बर, 1914 के अंक में प्रसिद्ध तुर्की नेता अनवर पाशा के भाषण की रिपोर्ट इस तरह प्रकाशित हुई–

''अब समय है कि भारत में विद्रोह की घोषणा कर दी जाए। अंग्रेजों के मैग्जीनों पर आक्रमण करके शस्त्र लूटे जाएँ और उनसे उन्हें मारा जाए। भारतीयों की संख्या तैंतीस करोड़ है और अंग्रेजों की सिर्फ दो लाख। उन्हें कत्ल कर देना चाहिए। उनके पास सेना नहीं। जल्दी ही तुर्क स्वेज नहर को बन्द कर देंगे।''

इस सैनिक योजना का यह भी एक सुझाव था कि जहां–जहां भी भारतीय सेनाएँ हों, विद्रोह किया जाए ताकि अंग्रेजों की शक्ति यत्र–तत्र बिखेर दी जाए। वे उसे भारत के विद्रोह को कुचलने के लिए बटोर न सकें। इसी उद्देश्य को सामने रखकर सिंगापुर में गदर करवाया गया; और स्याम, बर्मा में विद्रोह कराने का प्रयत्न किया गया। मौलवी बरकतुल्ला को काबुल के अमीर को अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा करने का काम सौंपा गया। मौलवी बरकतुल्ला को उम्मीद थी कि युद्ध छिड़ जाने पर मिस्र, आयरलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका तथा दूसरे देशों में विद्रोह होंगे। सोहनसिंह भकना, प्रधान गदर पार्टी को भी मिस्र में विद्रोह होने की पूरी आशा थी। उन्होंने बताया कि कई देशभक्त ईरान और काबुल में काम कर रहे थे।

यह तो स्पष्ट ही है कि गदर पार्टी के कार्यक्रम का सबसे बड़ा अंग भारत में क्रान्ति के लिए तैयारी करना था। सबसे महत्त्वपूर्ण काम था, भारत की सेनाओं को गदर के लिए खड़ा करना। पहले महायुद्ध के छिड़ने से पूर्व 13 जनवरी, 1914 के अंक में 'गदर' अखबार ने क्रान्तिकारियों को काबुल जाकर बन्दूकें बनाना सीखने तथा वहाँ से पंजाब लाने की प्रेरणा दी। 1907 के आन्दोलन के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार अजीत सिंह ने गदर पार्टी के सदस्यों को सानफ्रांसिस्को में इसी मतलब की एक चिट्ठी लिखी।

एक बात को भली प्रकार से समझ लेना आवश्यक है कि गदर पार्टी किसी दूसरी विदेशी शक्ति के हाथों में खेलना नहीं चाहती थी। वह सिर्फ अपने देश को आजाद कराने के लिए उस किस्म के प्रयत्न करना चाहती थी, जैसे बैंजामिन फ्रैंकलिन या इटली तथा अन्य देशों के देशभक्तों ने किए। जब लाला हरदयाल ने 1914 के महायुद्ध के समय, अमेरिका

से जर्मनी जाकर दूसरे भारतीय देश भक्तों के साथ मिलकर बर्लिन में 'इण्डियन रिवोल्यूशनरी सोसाइटी' कायम की, तो इसका उद्देश्य भी स्पष्ट रूप में भारत में पंचायती राज्य स्थापित करना ही रखा गया।

गदर पार्टी की भारत में क्रान्तिकारी तैयारियों का असली उद्देश्य भारतीय सैनिकों को विद्रोह के लिए तैयार करना था। किसी क्रान्ति को सफल बनाने के लिए सैनिक सेवाओं को साथ मिलाना आवश्यक होता है। पर उस समय देश में लोक-क्रान्ति तो एक ओर; कोई शान्तिमय राजनीतिक आन्दोलन भी नहीं था। बंगाल में क्रांतिकारियों की कुछ टोलियाँ जरूर काम कर रही थीं। बंगाल के कई प्रसिद्ध क्रांतिकारियों ने गदर पार्टी की इस योजना को बहुत पसन्द किया कि सेनाओं में विद्रोह कराया जाए। उनमें से कई इसी से प्रेरित होकर गदर पार्टी में शामिल हो गए। इसके अतिरिक्त गदर पार्टी का यह अनुमान ठीक साबित हुआ कि युद्ध की हालत में सिपाहियों को अपने देश की आजादी के लिए प्रेरणा देना कोई मुश्किल नहीं था, जबकि उन्हें विदेशी शासकों की नौकरी में मौत की परछाइयाँ नजर आती थीं। इसलिए देश के लिए क्यों न प्राण न्यौछावर किए जाएँ। गदर क्रान्तिकारियों को भारतीय सेनाओं को विद्रोह के लिए खड़ा करने में जो सफलता मिली वह इस बात का प्रमाण है। इसलिए भारतीय सेनाओं को बगावत के लिए तैयार करना, और इसे भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम का मुख्य अंग बनाना, गदर पार्टी की योजना का न सिर्फ एक सही कदम था, बल्कि उस समय की देश की परिस्थितियों की दृष्टि में भी इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं था।

(स्रोत : किताब ''गदर पार्टी का इतिहास'')

माटी का एक नाग बना के
पूजे लोग लुगाया
जिंदा नाग जब घर में निकले
ले लाठी धमकाया
जिंदा बाप काई न पूजे
मरे बाद पुजवाया
मुठ्ठीभर चावल ले के
कौवे को बाप बनाया
यह दुनिया कितनी बाबरी हैं

- संत कबीर

अंधविश्वास

सपना

टिकेश कुमार

सपना अलौकिक शक्ति और देवी-देवताओं के कारण नहीं आता, यह दिन की घटनाओं पर आधारित, अचेतन इच्छाओं की पूर्ति होता है

कुछ लोगों का मानना है कि सपना एक अलौकिक घटना है, जो देवी-देवताओं के प्रभाव से होता है। उसका यह भी मानना हैं कि यदि देवी-देवता खुश रहते हैं तो इससे व्यक्ति मधुर एवं आनंददायक सपना देखता है, परंतु देवी देवता नाराज हो जाये तो व्यक्ति में भयंकर एवं घबरा देने वाले सपना पैदा करते है। बुरी आत्मा की छाया के कारण बुरा सपना देखते हैं। यह भी कहते हैं कि स्वप्न में व्यक्ति की आत्मा व्यक्ति के शरीर से अलग होकर विचलन करती है और उस आत्मा बाहर कुछ भी देखती सुनती है, वही व्यक्ति को स्वप्न में दिखाई देता है।

लेकिन ऐसा नहीं है, मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड के सिद्धांत में स्वप्न (सपना) पिछले दिन की घटनाओं में पाया जा सकता है। सभी सपने प्रेरित और इच्छाओं की अभिव्यक्ति हैं। बच्चों के सपने और वयस्कों के कुछ सपने, उदाहरण के लिए, भूखे या प्यासे होने पर खाने-पीने के सपने, जैविक जरूरतों से उत्पन्न होने वाली इच्छाओं की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हैं। जिसे उन्होंने ''दिवस अवशेष'' कहा। बहुत छोटे बच्चों के मामले में फ्रायड ने दावा किया, यह आसानी से देखा जा सकता था कि छोटे बच्चे सीधी तरह से पिछले दिन (''स्वप्न दिन'') उनमें उठी इच्छाओं की पूर्ति को सपने में देखते हैं। दिन का ही क्रियाकलाप से कुछ को सपना में देखता है, जिसमें बुरे, अच्छे, सामान्य हो सकते हैं। परीक्षा के समय बच्चें अधिक रात तक जगकर पढ़ने से सोये हुए कुछ-कुछ पढ़ने-लिखने लगता है। अगर परीक्षा में फेल होने का डर रहता है तो उस बच्चें को परीक्षा हाल में लेट से पहुँचना। पेन काम नहीं कर रहा, मैं लिख नहीं पा रहा हूं, कुछ लिखा नहीं हूं और पेपर ले लिया जैसी स्वप्न (सपना) देख सकता है।

वयस्कों में अचेतन में उपस्थित अव्यक्त विचार को सपना द्वारा पूरा करता है और स्वप्न के माध्यम से अचेतन की दमित इच्छाओं को चेतना में प्रवेश करने से पूर्णत: रोक देते हैं। इस प्रकार से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कोई अलौकिक शक्ति, देवी-देवताओं, बुरी आत्मा और काली छाया के कारण सपना (स्वप्न) नहीं आती है।

- मनोवैज्ञानिक, अध्यक्ष, एंटी सुपरस्टीशन ऑर्गेनाइजेशन (ए एस ओ)

(मार्क्स की 'पूंजी' पर आधारित पाठ–10)

बच्चों के लिए अर्थशास्त्र

रंगनायकम्मा



हर 'श्रम' काम है पर हर काम श्रम नहीं!

भात पकाना – यह काम है। यह श्रम भी है।

भात खाना– यह भी काम है। पर यह श्रम नहीं।

पढ़ाना (अध्यापन) – यह काम है। यह श्रम भी है।

पढ़ना (अध्ययन) – यह भी काम है। पर यह श्रम नहीं।

(हम एक बात यहां स्पष्ट करना चाहते हैं। हम अभी जो पढ़ रहे हैं वह क्या है ? **'अर्थशास्त्र के पाठ।'** अर्थशास्त्र में ऐसी अनेक अवधारणाएँ आती हैं, जैसे उत्पाद, पैसा, काम, श्रम आदि। इनमें हमें 'श्रम' की अवधारणा को समझ कर उसी अनुसार इसकी बात करनी चाहिए। रात भर एक व्यक्ति जगा रहता है और कोई किताब पढ़ कर पूरी करके कहता है, ''देखो, मैंने कितना श्रम किया है।'' चूंकि यह व्यक्ति रात भर सोये बिना पढ़ता रहा है, इसलिए इस अर्थ में कि उसने बड़ी मेहनत की है, कोई कह सकता है कि उसने बड़ा 'श्रम' किया है। लेकिन अर्थशास्त्र के अनुसार वह श्रम नहीं है। उस व्यक्ति ने अगर अपने पेशे के तौर पर या मदद के तौर पर कोई किताब पढ़ी हो तब तो वह श्रम होगा। अगर उसने अपने ही लिए पढ़ा हो, तो वह श्रम नहीं। 'श्रम' शब्द का प्रयोग हमें इसी आशय के साथ करना चाहिए।)

'श्रम' का आशय हमेशा किसी न किसी तरह के काम से होता है।

मगर 'काम' श्रम हो सकता है या नहीं भी हो सकता है।

सभी तरह के काम श्रम नहीं होते।

मान लें कि किसी के घर में सावित्री नाम की एक आया हैं जो बच्चों की देखभाल करती हैं। वे बच्चों को नहलाती हैं, खाना खिलाती हैं, उनका मनोरंजन करती हैं और सुला देती हैं। वे कई और काम भी करती हैं। ये सारी ही चीज़ें श्रम कहलाती हैं।

सावित्री अपने घर में अपने बच्चों की देखभाल का जो काम करती है वह भी श्रम ही होता है।

बच्चों को नहलाना – श्रम।

खुद नहाना – श्रम नहीं।

बच्चों को खाना खिलाना – श्रम।

खुद खा लेना – श्रम नहीं।

बच्चों को सुलाना – श्रम।

खुद सो जाना – श्रम नहीं।

सावित्री यदि खुद नहाती हैं, खाना खाती हैं या किताब पढ़ती हैं, तो यह सब काम है। इन कामों को करते हुए शरीर कुछ हद तक थक भी जाता है। फिर भी इस तरह का काम श्रम नहीं होता। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि अपने शरीर से हम जो भी काम करें और जैसा भी हिले–डुले, वह सब श्रम ही होगा।

आइए, 'पढ़ाने के काम' को देखें। इसमें एक अध्यापक और कुछ छात्र होते हैं। इस श्रम में कोई कच्चा माल नहीं होता। इस श्रम के लिए कुछ वस्तुओं की जरूरत होती है। जैसे कमरा, ब्लैकबोर्ड, चॉक, कुर्सियों, बेंच इत्यादि। यब सब इस श्रम के लिए जरूरी औजार हैं। अध्यापक जब चॉक से ब्लैकबोर्ड पर लिखता है, चॉक छोटा होता जाता है और उसका बुरादा बन जाता है। यह चॉक सहायक सामग्री है।

अध्यापक अगर बच्चों को छड़ी से मारे, तो यह काम श्रम नहीं होगा। बच्चों को मारना–पीटना पढ़ाने की कोई स्वाभाविक जरूरत नहीं होती। जिस छड़ी से बच्चों को मारा जाता हो, वह न तो पढ़ाने के श्रम का औजार है और न ही सहायक सामग्री। यह एक अनुचित औजार है, जिसका पढ़ाने के श्रम से कोई वास्ता नहीं। अगर यह अनुचित औजार एक जरूरत बन गया हो, तो इसका मतलब यह होगा कि अध्यापक और छात्रों के बीच रिश्ता दोषपूर्ण है। बच्चों को मारना–पीटना चूँकि गलत है, इसलिए इस अनुचित औजार की जरूरत किसी अनैतिक काम को करने के लिए ही पड़ी होगी। अध्यापक के हाथ में छड़ी देखकर हम यह न समें कि छड़ी पढ़ाने के श्रम का कोई जरूरी औजार है।

(हम यह तो कह चुके हैं कि हम 'अर्थशास्त्र' पढ़ रहे हैं। हम सिर्फ अर्थशास्त्र ही नहीं पढ़ रहे हैं। हम यही दर्शनशास्त्र भी पढ़ रहे हैं। इस बारे में हम इस पाठ के अन्त में विस्तार से चर्चा करेंगे।)

जो व्यक्ति पढ़ाता है वह अध्यापक है। पढ़ाना एक तरह का श्रम है। इस श्रम में ऐसा नहीं है कि अध्यापक के साथ छात्र भी काम करते हों। छात्र यहां महज पढ़ने वाले हैं, न कि पढ़ाने वाले। पढ़ाना एक काम तो है, पर यह श्रम नहीं। कोई कोच अगर खेलों का आयोजन करता हो और खिलाड़ियों को खेल की ट्रेनिंग देता हो, तो यह श्रम होगा। लेकिन खेल सीखना और खेल खेलना श्रम नहीं होता।

अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ठण्डी हवा में टहलना

क्या श्रम है ?

नहीं।

क्या अखबार पढ़ना श्रम है ?

नहीं।

जब हम कुछ और पाठ पढ़ लेंगे तब श्रम का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा।

खनन अथवा कुदरत से कुछ निकाल लेने के श्रम:

जमीन के अंदर खदानों में कोयला, तरह-तरह के धातु, खनिज पदार्थ, पेट्रोलियम, तेल, गैस इत्यादि होता है। इसी तरह कुदरती तौर पर बहती नदियों और सागरों में मछलियाँ और मोती होते हैं। कुदरती तौर पर पाये जाने वाले इन पदार्थों को कुदरत से बाहर निकालने के लिए किये जाने वाले तरह-तरह के श्रम को 'खनन का श्रम' या 'कुदरत से कुछ निकाल ले जाने' का श्रम कहा जाता है। जब कुदरती पदार्थों को इस तरह निकाल ले जाने का कोई श्रम किया जाता हो, तो उसमें कोई कच्चा माल नहीं लगता। पाठ 9 में हमने इस पहलू के विषय में कुछ बातें की हैं। खनन के श्रम में सिर्फ औजार और सहायक सामग्री ही जरूरी होती है। खनन के श्रम से जो चीजें पैदा होती हों, उनका बाद में अलग-अलग किस्म के श्रम में कच्चे माल के रूप में प्रयोग हो जाता है।

सोना, चाँदी, ताँबा और लोहे जैसे धातु धरती के भीतर कुदरती तौर पर बन जाते हैं। कोयला बड़े-बड़े खण्डों के रूप में जमीन के अन्दर पाया जाता है, जबकि धातु इससे भिन्न, अपने विशुद्ध रूप में नहीं पाये जाते। धातु जमीन के अन्दर मिट्टी के साथ मिले हुए खनिज के कणों के रूप में होते हैं। मिट्टी में खुदाई करने, खनिज को अलग करने और धातु को विशुद्ध रूप में निकालने जैसे अलग-अलग तरह के श्रम करने के बाद ही हमें शुद्ध धातु के थक्के मिल पाते हैं। इन धातु के थक्कों से हम अनेक प्रकार के उत्पाद तैयार कर सकते हैं।

यह सारी चर्चा हम इसीलिए कर रहे हैं कि 'पैसा क्या होता है' यह समझ सकें। है न ? पैसा सोने से बनता है। मगर इसका यह अर्थ नहीं कि महज यह जान लेने पर कि पैसा सोने से बनता है, हम यह समझ रहे हों कि पैसा क्या होता है ? पहले हमें अलग-अलग प्रकार के उत्पादों के प्रयोग के बारे में जानना होगा।

श्याम के परिवार के सभी सदस्य चिकनी मिट्टी के घड़े बनाते हैं। चिकनी मिट्टी से ही वे तमाम सारी चीजें बना लेते हैं-छोटे-छोटे कुल्हड़, खाना बनाने के बर्तन, पानी रखने के लिए बड़े-घड़े बगैरह। हमेशा उनका घर ढेर सारे नये-नये घड़ों से भरा रहता है। मगर सिर्फ घड़ों से ही उनकी सारी जरूरतें पूरी नहीं हो पातीं। रोज ही उन्हें चावल, सब्जी और दूध की जरूरत होती है। कभी-कभार कपड़ों और जूतों की भी जरूरत पड़ती है। ये सारी चीजें उन्हें कैसे मिल पाती होंगी ? वे तो सिर्फ घड़े ही बनाना जानते हैं। उन्हें दूसरा कोई काम नहीं आता। फिर उन्हें दूसरी चीजें कैसे मिल पाती हैं ?

सवाल और जवाब

1. 'श्रम' का अर्थ है 'काम', मगर 'काम' का अर्थ 'श्रम' नहीं। इस वाक्य का अर्थ समझाएं।

जवाब : श्रम का मतलब है किसी न किसी प्रकार का काम। लेकिन जो काम हम अपने लिए करते हों वह श्रम नहीं होता। साँस लेना, खाना खाना, नहाना, सोना, पढ़ना और खेल खेलना जैसी गतिविधियाँ श्रम की श्रेणी में नहीं आतीं। हम अगर इन्हीं गतिविधियों को दूसरों के खातिर करें (इन 'दूसरों' में हमारे अपने बच्चे भी हो सकते हैं), तो फिर वह गतिविधि श्रम की श्रेमी में आती है। हम अगर किन्हीं वस्तुओं को बनाने के लिए या अपने जीवन के लिए जरूरी कोई काम करें, तो वह श्रम होगा।

2. (1) साँस लेना, (2) खेत जोतना, (3) पुस्तक पढ़ना, (4) कपड़े धोना, (5) गाड़ी चलाना, (6) सोना- इनमें से कौन सा काम श्रम है और कौन-सा श्रम नहीं ?

जवाब : 1, 3, 6 श्रम नहीं हैं। बाकी सब श्रम हैं।

3. खाना खाने और पुस्तक पढ़ने जैसी क्रियाएँ श्रम नहीं होतीं। फिर जो श्रम न हों ऐसी क्रियाओं को करने के लिए क्या हमें किन्हीं साधनों की जरूरत नहीं होती ?

जवाब : किसी भी काम को करने के लिए उस काम से सम्बन्धित कुछ चीजों की हमें जरूरत होती ही है, फिर वह काम चाहे श्रम हो या न हो। यदि हमें खाना खाना हो, तो चावल की जरूरत होगी। हमें पुस्तक पढ़ना हो, तो पुस्तक की जरूरत होगी। किसी भी काम को करने के लिए उस काम से सम्बन्धित साधनों की जरूरत होगी, फिर चाहे वह काम श्रम हो या न हो।

4. अगर कोई अध्यापक अपने छात्रों पर छड़ी का प्रयोग करता हो, तो इससे मालूम होता है कि उस अध्यापक और उसके छात्रों के बीच रिश्ता दोषपूर्ण है। ऐसा क्यों ?

जवाब : अध्यापक वह है जिसका काम हो छात्रों को पढ़ाना। उसका काम सिखाना-पढ़ाना है, न कि मारना-पीटना। अगर कोई अध्यापक अपने छात्रों को मारे-पीटे, तो इससे यही जाहिर होता है कि वह व्यक्ति अध्यापक की नहीं, बल्कि पुलिस वाले की भूमिका निभा रहा होगा। शिक्षा देने के स्थान पर ऐसे रिश्तों की उम्मीद नहीं की जाती जहाँ बच्चों को मारा-पीटा जाता

शेष पृष्ठ 24 पर

अंधविश्वासों का फैलता मायाजाल

पंडेपुरोहित रीति-रिवाजों का ऐसा बखान करते हैं कि व्यक्ति उन्हें पूरा करने में पैसा पानी की तरह बहा देता है।

''अरे शीला, तुम....आज छुट्टी ले कर बैंक कैसे आई हो?'' माह के आखिरी सप्ताह में उसे बैंक में देख कर मैंने पूछा।

''क्या बताऊं दीदी, बड़ी परेशानी में हूं। जी. पी. एफ. (जनरल प्रोविडेंट फंड) निकाला था, वही लेने आई हूं।''

अचानक तुम्हें भविष्य निधि का पैसा निकालने की आवश्यकता क्यों पड़ गई ? क्या कोई शादी ब्याह है ?''

''शादीब्याह नहीं है, कल मेरी सास की तेरहवीं है, अत: भोज हेतु पैसा निकालना पड़ रहा है।''

औचित्यहीन मृतक भोज

शीला के कहने पर जब हम दूसरे दिन उस के यहां 'तेरहवीं' में पहुंचे तो आयोजन की शानशौकत देख कर ऐसा लगा जैसे यहां मातम नहीं, खुशी मनाई जा रही हो। तमाम मेहमान तरह-तरह के पकवान उड़ाते नज़र आ रहे थे। भजनों के रिकार्ड बज रहे थे। शीला के पति व्यवस्था संभालने में लगे थे।

शीला मुझे देखते ही बोली, ''मैंने घर वालों से कहा था कि 5 पंडित बुला कर, दान दक्षिणा दे कर तेहरवीं कर लेते हैं। 'भोज' देने की जगह सासुजी के नाम से अनाथालय के बच्चों को नए वस्त्र दान कर देते हैं। पर मेरे पति ने एक न सुनी। वह कहते हैं, 'कुल पुरोहित ने 5 सौ लोगों को भोजन कराने और 13 दिन की अपनी कमाई ब्राह्मणों को दान देने की बात कही है। यदि हम ने ऐसा नहीं किया तो मां की 'आत्मा' को शांति नहीं मिलेगी, पूर्वज नाराज हो जाएंगे। ऐसे में भटकती आत्मा कुछ भी अनर्थ कर सकती है।''

शीला की बात सुन कर मैं सोचने लगी कि जिस घर में एक व्यक्ति को मरे अभी चंद रोज ही हुए हैं, वहां ऐसी शानदार दावत देना भला कहां की बुद्धिमत्ता है ?

शास्त्रों में 'मृतक भोज' का उल्लेख तो इसलिए है कि पंडे पुजारी इत्यादि को हलवा पूरी दान लगातार मिल सके, पर इस का अर्थ यह नहीं कि शानदार दावत का आयोजन किया जाए। जो लोग अंत्येष्टि त्रयोदशी तक ही सीमित रहते हैं, उनका कौन सा अनर्थ हो रहा है। वे तो प्रगति के पथ पर और भी आगे बढ़ रहे हैं।

शादीब्याह में फैला तामझाम

पुरोहितों व मौलवियों द्वारा कराए जाने वाले शादीब्याह को ही लें, बड़े बूढ़े पुरोहितों की इच्छानुसार रीतिरिवाजों का ऐसा तानाबाना बुनते हैं कि उन्हें पूरा करने में घर भर को पसीना आ जाता है। यदि कोई रस्म याद नहीं रही तो अनर्थ की आशंका से मन कांप उठता है। फिर हड़बड़ाहट में अपनी ही असावधानी से कोई दुर्घटना हो गई तो पुरोहित लोग उसे भूलवश छूटी रस्म का ही दुष्परिणाम करार देते हैं।

इन रीति-रिवाजों को निभाते वक्त जो वस्तुएं ख़रीदी जाती हैं, वे बाद में काम नहीं आती। जो समय नष्ट हुआ, भगदड़ मची और सिरदर्द हुआ। उसकी भी कोई उपयोगिता समझ में नहीं आती। समय, श्रम एवं धन की बरबादी का कोई उद्देश्य भी तो होना चाहिए।

यह तो अपना पेट भरने के लिए पुरोहितों के बनाए गए 'बुढ़िया पुराण' हैं। इस तामझाम में भी काफी पैसा बरबाद होता है।

अर्थव्यवस्था चौपट

अर्थव्यवस्था को चौपट करने वाले ऐसे अनेक अंधविश्वास हैं, लेकिन फिर भी ऐसे तमाम आडंबर हमारे सिर पर लाद दिए गए हैं और ये ढेरों पैसा व समय नष्ट करते हैं।

भूत-प्रेतों व ग्रहनक्षेत्रों के भय से लोग अकारण परेशान रहते हैं। आशंकाग्रस्त भयभीत मनुष्य की मानसिक स्थिति गड़बड़ा जाती है। और वह अपना साहस एवं प्रतिभा गंवा बैठता है। ओझा तथा ज्योतिषी लोग अपनी आमदनी के लिए भूतों और ग्रहों के प्रकोप का डर लोगों के मन में बैठा देते हैं। विपत्ति निवारण का ढोंग कर के वे अंधविश्वासी लोगों को खूब लूटते हैं।

महल्ले या कालोनी में एक को 'भूत' चढ़ा नहीं कि उस के अधिकांश लोग 'भूतवादी' बन जाते हैं। उन का पैसा झाड़-फूंक, चढ़ावा, प्रसाद के कुचक्र में नष्ट होता ही रहता है, जिन घरों में वह जंजाल घुसा होगा, उनमें पलने वाले बच्चों के मन में आरंभ से ही भय एवं अंधविश्वास की जड़ें जमने लगती हैं।

हमारी मुंहबोली बहन गोदावरी चल बसीं, उन के भाई उन के 'फूल' (अस्थियां) ले कर हरिद्वार गए। कर्मकांड करवाने के नाम पर वहां के पंडों ने पूरे 5 हज़ार का खर्च बता दिया।

मेरी सहेली निशा हमेशा बीमार रहती है। उसके पति ने उसे एक तांत्रिक के पास जाने के लिए कहा, पर उसने इनकार कर दिया।

एक दिन उस के पति का एक्सीडेंट हो गया तो वह बोली, ''आप तो इस तांत्रिक के भक्त हैं, फिर आप का एक्सीडेंट कैसे हो गया ?''

इस पर वह बोले, ''यही एक्सीडेंट किसी दूसरे का होता तो वह बचता नहीं, पर मैं तांत्रिक की सेवा करता हूं, इसलिए बड़ी विपदा टल गई, छोटी में बदल गई।''

आजकल लोग धर्म के नाम पर भोलीभाली जनता को बेवकूफ बना कर खूब मौज उड़ा रहे हैं।

मनगढ़ंत अंधविश्वास

अंधविश्वास अपने आप ही पैदा नहीं हो जाते बल्कि ढोंगी, पंडितों, मुल्ला मौलवियों व पादरियों ने मनगढ़ंत किस्से गढ़ कर इन्हें प्रचारित किया है। इन्होंने ही बिल्ली का रास्ता काटना, छींक आना, मुंडेर पर कौआ बोलना, शव देखना, भरा या खाली पड़ा देखना, शनिवार को पदभार ग्रहण करना, गंडाताबीज व भभूत का सहारा लेने जैसी बेसिरपैर की बातों को 'शुभअशुभ' या सफलता-असफलता का द्योतक बना दिया है।

हम वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, जहां धर्म और विज्ञान का समन्वय होना चाहिए। धर्म के नाम पर अंधविश्वास फैलाने वालों से सदैव दूर रहना चाहिए।

(स्त्रोत : पुस्तक ''तर्क से काटिए हर अंधविश्वास का जाल'' संपादक : राकेश नाथ)

जो लोग-भूत-प्रेत, श्राद्ध, झाड़फूंक, प्रसाद आदि अंधविश्वासों के चक्कर में नहीं पड़ते उनका कौन सा अनर्थ होता है? क्या वे प्रगति पथ पर आगे नहीं बढ़ते ?

पृष्ठ 22 का शेष

हो। ऐसा रिश्ता दोषपूर्ण रिश्ता ही होगा।

5. ''हम यहाँ दर्शनशास्त्र भी पढ़ रहे हैं।'' ऐसा हमने इस पाठ में कहा है। यह दर्शनशास्त्र क्या है ?

जवाब : हर किसी को किसी एक समस्या को और हर समस्या को समान प्रकार से समझना चाहिए। सही समाधान हर किसी को समान रूप से सही लगना चाहिए। लेकिन समाज में आजकल ऐसा नहीं होता। छोटे से छोटे मुद्दे पर भी हर व्यक्ति का अपना अलग मत होता है। इन मतों में या तो कोई एक मत सही नहीं होगा। एक मत यह है कि अगर बच्चे अपनी पढ़ाई ठीक से नहीं करते, तो उन्हें सजा देना और धौंस दिखाना उचित है। इस मत के मुताबिक बच्चों को यदि विभिन्न तरीके से सजा दी जाये, तो वे ठीक से पढ़ाई करने लग जायेंगे। जैसे दीवार के पास कुर्सी की तरह बिठाकर रखना, नाक के पास आग ले जाना और उसमें मिर्च डाल देना, कमरे की छत्त से या किसी पेड़ से उलटा लटकाकर बेरहमी से मारना पीटना।

दूसरा मत यह है कि अगर बच्चों को धीरे-धीरे, धैर्य के साथ और सरल शब्दों में पढ़ाया जाये, तो वे ध्यानपूर्वक और रूचि से पढ़ लेंगे। हर मुद्दे पर हमें परस्पर विरोधी मत दिखायी देते हैं। हर व्यक्ति का अपना ही कोई दर्शन होता है! मगर हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि कौन सा दर्शन सही है और उसी पर अमल करना होगा।

एक पत्र

मानववादी त्योहार

-डॉ. रणजीत

प्रिय बलवन्त सिंह जी

मुझे लगता है भारत के हम सब विवेकवादियों-तर्कशीलों-मानववादियों को कुछ ऐसे दिन सर्वानुमति या व्यापक सहमति के आधार पर तय कर लेने चाहिएं, जिनको हम त्योहार की तरह मनायें, गोष्ठियां करें और उनकी स्मारक घटनाओं और नायकों की चर्चा करें। इनमें से कुछ तो मनोज मलिक द्वारा चलायी जा रहीं मानववादी इकाइयों (ह्यूमेनिस्ट यूनिट्स) के तरुण छात्रों द्वारा अभी मनाये जा रहे हैं।

इनमें मजदूर दिवस 1 मई, अन्तर्राष्ट्रीय महिला (समानता) दिवस 8 मार्च, विश्व पर्यावरण रक्षा दिवस 5 जून, विश्व मानववादी दिवस 21 जून और मानवाधिकार दिवस 10 दिसम्बर शामिल हैं। इस टिके दिनों में हमें फ्रेंच क्रांति दिवस या बेस्टील डे को भी जोड़ लेना चाहिए। ऐसा मेरा सुझाव या प्रस्ताव है क्योंकि इस दिन पहली बार मानव मात्र की आज़ादी, बराबरी और भाईचारे की नींव रखी गयी थी।

हमारे मुख्य नायकों या प्रेरणास्त्रोतों के जन्म दिवस भी हमें मनाने चाहिएं। इनमें मेरे प्रस्ताव के अनुसार चार्ल्स डार्विन दिवस 12 फरवरी, कार्ल मार्क्स दिवस 5 मई, सिगमंड फ्रायड दिवस 8 मई; अलबर्ट आइन्स्टाइन दिवस 16 मार्च, इंगरसोल दिवस 11 अगस्त और बर्ट्रेंड रसेल दिवस 18 मई मनाये जा सकते हैं।

इन वैश्विक व्यक्तित्वों के अलावा मेरा प्रस्ताव जिन भारतीय नायकों के जन्म दिवस मनाये जा सकते हैं-वे हैं गौत्तम बुद्ध (बुद्ध पूर्णिमा), ई.वी. रामासामी (17 सितम्बर), मानवेन्द्रनाथ रॉय (21 मार्च), जवाहर लाल नेहरू (14 नवंबर), भीम राव अम्बेडकर (14 अप्रैल), राहुल संकृत्यायन (9 अप्रैल), अब्राह्म टी को वूर (10 अगस्त), गोयाराजू 'गोरा' (15 जनवरी), बाबा आम्टे (26 दिसंबर) और अमर्त्यसेन 3 नवंबर इन जन्म दिनों के साथ हमें शहीद भगत सिंह को उनके शहीदी दिवस पर याद करना चाहिए (23 मार्च) और साथ ही उन राम मनोहर लोहिया को भी, जिन्होंने उनकी शहादत के सम्मान में कभी अपना यह जन्म दिवस नहीं मनाया।

इस सूची को लम्बा तो चाहे जितना किया जा सकता है, पर यह पहले ही 22 तक पहुँच चुकी है। हां किंचित परिवर्तन पर कुछ साथी जोर दे सकते हैं। आप कृपया मेरे इस पत्र को तर्कशील पथ में प्रकाशित करें कि इस पर विचार-विमर्श हो सके।

-आपका रणजीत

मूर्ति विसर्जन जानलेवा भी

-भारत भूषण श्रीवास्तव

मध्य प्रदेश के एकएक गांव, जिनमें अधिकर लोग छोटी जाति के रहते हैं, जुलूस की शक्ल में दशा माता का विसर्जन करने जा रहे थे। तभी हाईवे पर तेज रफ्तार से आते एक ट्रक ने बेकाबू होकर जुलूस को रौंद दिया, जिससे मौके पर ही 3 लोगों की मौत हो गई और कई श्रद्धालु घायल हो गए।

पहली नजर में गलती बेशक ट्रक ड्राइवर की है जो ट्रक की रफ्तार काबू में नहीं रख सका, पर धर्म के नाम पर सड़क को घेर कर भीड़ जमा कर कर मूर्ति विसर्जन के लिए नाचते गाते जाना किस की गलती है। सड़कें धार्मिक कार्यक्रमों के प्रचार के लिए हैं या वाहनों के लिए। लोग खुद के जनून को काबू में नहीं रख पाते और बेवक्त मारे जाते हैं। कहने को तो दशा माता या कोई और मूर्ति, जिस का विसर्जन होने वाला है, भक्तों की जिंदगी संवारती है, पर वह भी ट्रक ड्राइवर जैसी लापरवाह और बेरहम ही निकले तो सोचना जरूरी है कि आखिर क्यों बचाने वाला भगवान हाथ पर हाथ धरे बैठे रहता है।

झांकियों का सच

पिछले दशकों में धार्मिक कार्यक्रमों की गिनती अचानक बढ़ी और कई गुना होने लगी है। आए दिन झांकियां लगती रहती हैं। कुछ जगह ये झांकियां 8-9 दिनों तक चलती हैं। इनमें जम कर पूजा पाठ और नाच गाना होता है। भीड़ भी ऐसी उमड़ती कि पांव रखने की जगह नहीं मिलती और धक्का-मुक्की में ही लोगों को आनंद आने लगता है।

झांकियों के दौरान हर कभी, हर कहीं सड़कें घेर ली जाती हैं। जाम होता है जिससे आम लोगों को परेशानी होती है। इन झांकियों में अरबों नहीं, खरबों रुपए फूंके जाते हैं। इससे चंदे की शक्ल में आम लोगों को जरूर जम कर आमदनी होती है।

लोग पहले 8-10 के गुट में पंडाल में रखी मूर्ति के सामने 8-9 दिन खूब चढ़ावा व प्रसाद चढ़ाते हैं। इस बाबत उन्हें कैसे कैसे उकसाया जाता है, यह वे खुद भी नहीं समझ पाते। झांकियां अब ब्रैंडेंड हो चली हैं, जिनमें मूर्ति ही करोड़ों रुपए की रखी जाती है और इससे भी ज्यादा रकम बिजली, सजावट व नाच गाने पर खर्च किया जाता है। भोपाल के न्यू मार्केट में सोने की भी मूर्ति रखी गई तो सहज लगा कि देश में कोई गरीबी या महंगाई नहीं है।

भक्तों और भक्ति दोनों का जनून देखते ही बनता है। मामला इस तरह का गंभीर है कि एक राज्य के पीओपी बोर्ड ने पीओपी की मूर्तियों को बनाने पर बैन लगाया क्योंकि विसर्जन के बाद पीओपी ज़मीन में घुलती नहीं है। इस पर भक्त सुप्रीम कोर्ट तक पहुंच गए, गनीमत है सुप्रीम कोर्ट ने सितंबर 2023 में इस पागलपन को धार्मिक स्वतन्त्रता का हिस्सा नहीं माना और भक्तों को भगा दिया।

फिर होता है विसर्जन

8-9 दिन तबीयत से पैसा और वक्त बरबाद करने के बाद होता है इन झांकियों की मूर्तियों का विसर्जन, जिन में लोग झूमते नाचते गाते मूर्ति को ट्रक, ठेले या दूसरे किसी वाहन में सजा कर नदियों, तालाबों और समुद्रों के किनारे ले जाते हैं। डोल ग्यारस, अनंत चतुर्दशी और नवरात्र में नवमी व दशहरे के दिन देश की जिंदगी झाकियों में ठहर सी जाती है।

विसर्जन के पहले चल समारोह होता है, जो अब गांव देहातों में भी इफरात से होने लगे हैं, लोग बैंडबाजे के साथ मूर्ति को सजा कर नदी, तालाब या समंदर किनारे ले जाते हैं और बड़े जज्बाती हो कर, गला फाड़ कर जयकारे से मूर्ति को पानी में बहा देते हैं।

जानलेवा जनून

विसर्जन जलसों के दौरान भक्तों का जनून देखते ही बनता है और मूर्ति को पानी में बहाने के दौरान कितने लोग पानी में डूब कर मर जाते हैं। इस का ठीक-ठाक आंकड़ा तो किसी के पास नहीं क्योंकि ऐसे लोग इसे दुर्घटना मान कर चुप हो कर मृत का दाह कर देते हैं।

राजधानी दिल्ली में बहुत तरह के इंतजाम, वरदी में नियुक्त गार्डों के बावजूद अब भी कई लोग मूर्ति विसर्जन के दौरान डूब कर मरते हैं। यमुना नदी में मूर्ति के साथ डूब कर

शेष पृष्ठ 47 पर

मासिक धर्म

- डा. नरेंद्र दाभोलकर

? मासिक धर्म होने वाली स्त्री द्वारा अचार को हाथ लगाने पर या उसकी छाया पड़ने पर अचार खराब हो जाता है। उसके छूने पर द्राक्ष, पान का बाग सड़ जाता है, यह सच है?

– यह सच नहीं है। स्त्री के बीजकोश से बीज बाहर निकलता है। वह बीज नलिका मार्ग से गर्भाशय में आता है। गर्भाशय में उसका मिलन पुरुष बीज से होने पर गर्भधारण होता है। यह गर्भधारण हो इसी अपेक्षा से स्त्री बीज बाहर पड़ने से ही प्रकृति ने गर्भाशय गर्भधारण के लिए अनुकूल करने की क्रिया शुरू कर दी होती है। मगर गर्भ न ठहरने पर यह तैयारी बेकार जाती है और निर्माण हुई अन्तर त्वचा मासिक स्राव के द्वारा बाहर निकलती है। इसे ही मासिक धर्म कहते हैं।

? उपर्युक्त विवेचन से यही ज्ञात होता है कि स्त्री का मासिक धर्म एक स्वाभाविक आसान क्रिया है। उपयुक्त न होनेवाला पदार्थ शरीर के बाहर फेंक देना इस क्रिया को अपवित्र क्यों मानना?

– स्त्री–पुरुषों के शरीर विभिन्न अनुपयुक्त पदार्थ निरन्तर बाहर फेंकते हैं, जैसे मल, मूत्र, पसीना, उसी प्रकार स्त्री का मासिक धर्म। मल, मूत्र उत्सर्जन से स्त्री–पुरुष अपवित्र नहीं होते हैं तो मासिक धर्म से अपवित्र कैसे? पुरुष के वीर्यपतन के समय पुरुष को अपवित्र पुरुष क्यों नहीं कहते?

मासिक धर्म के वक्त स्त्री अपवित्र होती है इसी कारण पान सड़ जाता है, अचार सड़ जाता है, यह स्त्रियों पर अन्याय करने वाला अंधविश्वास है।

मासिक धर्म से युक्त स्त्री को नौका में नहीं बैठना चाहिए; यदि स्त्री नौका में बैठती है, तो नौका उलट जाती है, ऐसी कई भ्रामक कल्पनाएं स्त्री के मासिक धर्म के बारे में प्रचलित हैं। उपर्युक्त विवेचन से वे हास्यास्पद हैं, इसे जानकार समझ सकते हैं।

साभार-किताब ''अंधविश्वास-प्रश्नचिन्ह और पूर्णविराम''।

स्त्रियों को न देवी मानने की जरूरत है
और न पूजने की,
बल्कि स्त्री का सम्मान करना और बराबरी का अधिकार
देना जरूरी है।

– सावित्री बाई फुले

पीपल पेड़ के नीचे भूत-प्रेत का डर

-टिकेश कुमार

जब मैं लगभग 6-7 साल का छोटा सा बच्चा था। उस समय गांव में बिजली की कमी के कारण अंधेरा रहता था। गलियों पर लाईट नहीं थी। गांव के कई घरों में बिजली नहीं थी और थी भी तो एक बल्ब, जो घर के अंदर में जलता था। घर का द्वार में कोई लाईट नहीं थी, इसलिए गली में चलने वाले लोगों को अंधेरे का सामना करना पड़ता था।

एक दिन की बात है, शाम के समय हम कुछ दोस्तों के साथ तालाब के पास घूमने के लिए निकले थे और तालाब के पार पर बैठकर हम सब आपस में बातें कर रहे थे। हमें समय का पता ही नहीं चला। रात होने लगी, तभी अचानक हमारी दृष्टि पीपल पेड़ के नीचे बुंग-बुंग (झिलमिलाती) रोशनी पर पड़ी। हम लोग धड़ से उठ खड़े हुए, उसमें से किसी एक दोस्त ने कहा टोनही (डायन) है भागों, किसी ने कहा भूत तो किसी ने प्रेतात्मा और हम सब कुछ सोचना-समझना छोड़कर भागने लगे। भागते-भागते गांव की एक दुकान में गए, वहां कुछ बुजुर्ग के साथ मेरे दादा जी भी बैठे थे। हम सब को हांफते देखकर मेरे दादा ने पूछा क्या बात है बेटा? हम सब एक आवाज में तालाब पार के पीपल के नीचे भूत कहने लगे और पूरी बात बताई।

तब दादा ने हमें बताया कि कोई भूत-प्रेत, टोनही (डायन) या प्रेतात्मा नहीं हैं और न ही होता है। वहां तालाब के पास पीपल पेड़ के नीचे दीया (दीपक) जल रहा था। उस तालाब के पास मृत व्यक्ति के परिवार वाले पीपल पर मटकी बांधकर उसके नीचे शाम को दीये जलाते हैं। जब तुम लोग वहां बैठकर आपस में बात कर रहे होंगे उसी बीच किसी ने जाकर दीया जलाया होगा और धीरे-धीरे हवा चलने के कारण दीया टिमटिमा रहा था।

हम सब बच्चों ने दीया को भूत-प्रेत, टोनही या प्रेतात्मा समझ गए। जिसे भूत भ्रम (Illusions) कहते हैं।

ग्रहों की दिशा
बदलने वाले तूफान की दिशा
क्यों नहीं बदल देते?

गाजा के एक बच्चे की आवाज.....

बाबा! मैं दौड़ नहीं पा रहा हूँ।
ख़ून सनी मिट्टी से लथपथ
मेरे जूते बहुत भारी हो गये हैं।
मेरी आँखें अंधी होती जा रही हैं
आसमान से बरसती आग की चकाचौंध से।
बाबा! मेरे हाथ अभी पत्थर
बहुत दूर तक नहीं फेंक पाते
और मेरे पंख भी अभी बहुत छोटे हैं।



बाबा! गलियों में बिखरे मलबे के बीच
छुपम-छुपाई खेलते
कहाँ चले गये मेरे तीनों भाई?
और वे तीन छोटे-छोटे ताबूत उठाये
दोस्तों और पड़ोसियों के साथ तुम कहाँ गये थे?
मैं डर गया था बाबा कि तुम्हें
पकड़ लिया गया होगा
और कहीं किसी गुमनाम अँधेरी जगह में
बन्द कर दिया गया होगा
जैसा हुआ अहमद, माजिद और सफ़ी के
अब्बाओं के साथ।
मैं डर गया था बाबा कि
मुझे तुम्हारे बिना ही जीना पड़ेगा
जैसे मैं जीता हूँ अम्मी के बिना
उनके दुपट्टे के दूध सने साये और लोरियों की
यादों के साथ।

मैं नहीं जानता बाबा कि वे लोग
क्यों जला देते हैं जैतून के बागों को,
नहीं जानता कि हमारी बस्तियों का मलबा
हटाया क्यों नहीं गया अबतक
और नये घर बनाये क्यों नहीं गये अबतक!
बाबा! इस बहुत बड़ी दुनिया में
बहुत सारे बच्चे होंगे हमारे ही जैसे
और उनके भी वालिदैन होंगे।
जो उन्हें ढेरों प्यार देते होंगे।
बाबा! क्या कभी वे हमारे बारे में भी सोचते होंगे?
बाबा! मैं समन्दर किनारे जा रहा हूँ
फुटबाल खेलने।
अगर मुझे बहुत देर हो जाये
तो तुम लेने ज़रूर आ जाना।
तुम मुझे गोद में उठाकर लाना
और एक बड़े से ताबूत में सुलाना
ताकि मैं उसमें बड़ा होता रहूँ।
तुम मुझे अमन-चैन के दिनों का
एक पुरसुकून नग्मा सुनाना,
जैतून के एक पौधे को दरख़्त बनते
देखते रहना
और धरती की गोद में
मेरे बड़े होने का इन्तज़ार करना।

- कविता कृष्णपल्लवी

रागनी

राजपाट और पाखंडियां का, जग म्हं रहा गठजोड़ सदा।
इनती मिलकै मौज उड़ाई, म्हारी एकता तोड़ सदा।।
1. जब से राज स्थापित होए, तब से इनका ऐक्का
राजा नै पाखंड फलाण का, इनको दिया था ठेक्का
निर्धन नै रहे गुमराह करते, बता कर्म का लेख्खा
लूट के कारण बढै गरीबी, ना कोए कैहता देख्या
सभी पाखंडी लूट कानी तै, राक्खै सैं मुंह मोड़ सदा।
2. लुट्टू राजे लुट्टू नेता,पायां पड़ैं पाखंडियां कै
देक्खो लोग्गो पूंजीपति भी, रहैं खड़े पाखंडियां कै
बड़े-बड़े आश्रम बणवारे धन आया कड़े तै फंडियां कै
गुंड्यां गेल्यां नेता बैठक, करैं अड़ै पाखंडियां कै
ज्यादा लोग बुकावण खात्तर इनकी लगी रहै होड़ सदा।
3. कहवैं अमीर ने ज्यादा चिंता, कैहते फिरैं अमीर दुखी
कहवैं गरीब ने थोड़ी चिंता, कैहते फिरैं गरीब सुखी
भला सुखी वो क्युकर लोग्गो जिसकी आटा दाल मुकी
उल्टा पाठ पढ़ा रे, जनता फेर भी क्यांतै रहै ढुकी
भर-भर गाड्डी फिरैं चोगरदै पाट्या रैह सै पोड़ सदा।
4. सब कुछ गुरु करैगा कैह कै, लूट से ध्यान हटाते यें
बिना लड़े ना हक मिलता या, हमको नहीं बताते यें
अगलै जन्म का ठेका लेवैं, इसकी नहीं सुणाते यें
अगला पिछला जन्म नहीं, वैज्ञानिक सब समझाते यें
अंग्रेज सिंह कैह निर्धन को रहै आंदोलन की लोड़ सदा।

अंग्रेज सिंह अलेवा

केस रिपोर्ट

फिर उसके गले की घुटन दूर हो गई

- बलवन्त सिंह लेक्चरार



अपने गांव में रणधीर एक छोटा सा किसान था। उसकी केवल तीन एकड़ ज़मीन थी। कुछ जमीन वह ठेके पर ले लिया करता था। वह अत्यन्त मेहनती इनसान था। अपनी मेहनत के दम पर उनके परिवार का गुज़ारा बहुत बढ़िया ढंग से चल रहा था। रणधीर की दो पुत्रियां तथा एक पुत्र था। बड़ी लड़की सुषमा की शादी हो चुकी थी। लड़का सुमित 12वीं में तथा छोटी लड़की शालिनी नौवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। अब तक उनका परिवार प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, परन्तु अचानक उनके परिवार को एक भयंकर समस्या ने घेर लिया।

गर्मियों के दिन थे। गर्मियों की छुट्टियों में शालिनी अपनी मां के साथ अपनी बड़ी बहन सुषमा के घर उससे मिलने के लिये चली गई। एक-दो दिन के पश्चात् उनकी मां तो वापिस अपने गांव में आ गई, परन्तु स्कूल की छुट्टियां होने के कारण शालिनी कुछ दिनों के लिए अपनी बड़ी बहन के घर में ही ठहर गई। शालिनी को अपनी बड़ी बहन के घर का माहौल खूब भा गया और वह वहां पर लगभग 20-22 दिनों तक रुक गई। सुषमा के ससुराल में उसका देवर विशाल भी लगभग शालिनी का ही हमउम्र था। अत: उनका वहां सारा दिन खेलते-खेलते ही बीत जाता था। दिन में कुछ समय वे दोनों इकट्ठे बैठ कर अपनी पढ़ाई भी कर लिया करते थे। जब छुट्टियां थोड़ी सी रह गईं तो सुषमा ने अपने पिता को फोन करके शालिनी को ले जाने के लिए कह दिया। अगले दिन रणधीर वहां जा कर शालिनी को अपने साथ घर पर ले आया। कुछ ही दिनों बाद जब छुट्टियां खत्म होने के पश्चात् जब स्कूल खुल गए तो शालिनी ने भी अन्य बच्चों के साथ स्कूल में जाना शुरू कर दिया। कुछ दिनों तक वह स्कूल में तथा अपने घर में बिल्कुल सामान्य रही।

इस दौरान एक दिन सुषमा अपने पति के साथ अपने मायके में मिलने के लिए आ गई। उस दिन जब शालिनी छुट्टी के बाद जब घर वापिस आई तो उसने अपनी मां को बताया कि उसे स्कूल में थोड़ा-थोड़ा सिर दर्द था परन्तु अब उसे तेज सिरदर्द हो रहा है। उसकी मां ने उसे सिरदर्द की एक गोली दे दी और उसे गोली खा कर बेड पर आराम करने के लिए कह दिया। वह सायंकाल तक बिस्तर में पड़ी रही परन्तु उसे कोई आराम नहीं आया। शाम को रणधीर उसे गांव के आर. एम. पी. डॉक्टर के पास ले गया। डॉक्टर ने शालिनी का बुखार बगैरह चैक करके उसे कुछ दवाईयां दे दीं। दवाईयां खाने के पश्चात् उसे सिर दर्द में तो कुछ आराम आ गया परन्तु अब उसके गले में घुटन सी होनी शुरू हो गई। उसे बोलने में तथा किसी से बातचीत करने में परेशानी होने लग गई। रात को उसे डर वाले तथा बुरे-बुरे सपने आने लग गए। उसने डर कर अपने मां-बाप को आवाज देनी चाही परन्तु उसके गले से आवाज़ ही नहीं निकल पा रही थी।

परिवार वालों ने सुबह डर कर देखा तो शालिनी की हालत अत्यन्त चिंताजनक थी। उसे थोड़ी-थोड़ी देर के बाद दौरे पड़ने शुरू हो गए। बार-बार दौरे पड़ने तथा गले की घुटन के कारण जब शालिनी की परेशानी अत्यधिक बढ़ गई तो घर वालों ने उसे नजदीकी शहर के एक प्रतिष्ठित अस्पताल में दाखिल करवा दिया। लगातार चार दिन अस्पताल में दाखिल रहने के बाद भी शालिनी की हालत में कोई सुधार नहीं आया। परेशान हो कर अस्पताल से छुट्टी लेकर वे उसे अपने घर पर ले आया। उस अस्पताल में हाल-चाल का पता करने आए उनके एक रिश्तेदार ने उन्हें यह सलाह दे दी कि ''शालिनी को कोई डॉक्टरों वाला रोग नहीं है। इसको तो किसी ओपरी-पराई चीज़ ने घेर लिया है।'' उसके साथ ही कह दिया कि शालिनी को तो केवल किसी बाबा द्वारा की जाने वाली झाड़-फूंक से ही आराम आ सकता है। परिवार खुद भी अंधविश्वासी था और ऐसे ही अंधविश्वासी रिश्तेदारों के कहने पर वे शालिनी को लेकर एक के बाद एक अनेकों बाबाओं, तान्त्रिकों, मुल्ला-मौलवियों, पीर के भगतों तथा बाबा जी के भगतों की चौकियों पर ले जाते रहे। बाबाओं की चौंकियों पर शालिनी अपना सिर घुमा कर खेलते समय बाबा व भगत उससे सवाल-जबाव करते तो वह गुमसुम हो कर बैठ जाती। शालिनी के गुमसुम हो जाने पर एक-दो बाबाओं तथा भगतों ने क्रोध में आ कर

शालिनी की चिमटों द्वारा खूब पिटाई भी कर दी थी।

अब शालिनी की हालत और भी अधिक खराब होती चली जा रही थी। अब उसे सपने में कथित भूत-प्रेत दिखाई देना शुरू हो गए। अब उसे ऐसा महसूस होने लगा कि कोई आदमी एवं औरत उसके ऊपर आ कर बैठ जाते हैं और उसका जोर से गला घोंट रहे हैं। इसी मानसिक परेशानी के चलते वह ऊंचे स्वर में चिल्लाने लग जाती और फिर बेसुध हो कर पड़ जाती। शालिनी की परेशानी बढ़ती ही चली जा रही थी। बाबाओं द्वारा पिटाई किये जाने से वह और भी अधिक परेशान हो चुकी थी। पता चलने पर उनके बहुत से रिश्तेदार शालिनी का हाल-चाल पूछने के लिए उनके घर आना शुरू हो गये। उन्हीं रिश्तेदारों में से एक ने उन्हें तर्कशील सोसायटी के जनहित में किये जा रहे कार्यों के बारे में समझा कर उन्हें मेरा फोन नंबर एवं पता दे कर उन्हें मेरे पास मनोरोग परामर्श केन्द्र में भेज दिया।

परामर्श केन्द्र में मैंने उन्हें पास बिठा कर पहले तो सामूहिक तौर पर बातचीत की और फिर उनसे अकेले-अकेले में भी पूछ पड़ताल की। गहन पूछ-पड़ताल द्वारा मैंने शालिनी की परेशानी के मर्म को पहचान लिया तथा लगातार दो-तीन बार की काऊंसलिंग के द्वारा उसकी समस्या का पूर्ण तौर पर समाधान कर दिया।

कारण क्या थे ?-शालिनी डील-डौल में अपनी आयु से काफी बड़ी लगती थी। जब मैंने उसे उसकी पढ़ाई के बारे में पूछा तो उसने बताया कि वह नौवीं कक्षा में पढ़ रही है। उसको पहली नज़र में देख कर मेरा अनुमान था कि वह कम से कम बारहवीं कक्षा की छात्रा होगी। काऊंसलिंग के दौरान उसने बताया कि जब वह गर्मियों के छुट्टियों में अपनी बड़ी बहन के घर पर गई थी तो उसे उसकी बहन का देवर विशाल अच्छा लगने लगा था। वह मन ही मन उसको चाहने लगी थी। वे दोनों हमउम्र थे, इसलिए वे दोनों सारा दिन इकट्ठे बैठ कर अपनी-अपनी पढ़ाई किया करते थे और इकट्ठे ही खेला करते थे। जल्दी ही उनमें अत्यधिक घनिष्टता हो गई और खेल-खेल में जब वे एक दूसरे के अंगों को हाथों से छू लेते तो उन्हें मन ही मन अत्यन्त सुखद अनुभूति हुआ करती थी। इस कारण उनमें आपसी आकर्षण और अधिक बढ़ता चला जा रहा था। अब वे अपना ज्यादातर समय एक दूसरे के साथ प्यार भरी बातें करने में ही व्यतीत कर दिया करते थे और मौका मिलने पर वे आपस में आलिंगन भी कर लिया करते थे। अब वे पूरी तरह से एक दूसरे में खो चुके थे और दोनों ही मर्यादा की सभी सीमाएं पार करने के लिए तैयार हो चुके थे।

एक दिन सुषमा के ससुराल के अन्य सभी सदस्य किसी जरूरी काम से घर से बाहर गये हुए थे। शालिनी और विशाल पढ़ाई का बहाना बना कर एक कमरे में अपनी किताबें ले कर बैठ गए। थोड़ी देर में सुषमा अपने घरेलू कामों में व्यस्त हो गई। उन दोनों ने जब सुषमा को अपने गृह-कार्य में व्यस्त देखा तो अपने 'प्रेम की प्यास' बुझाने का सुनहरी मौका जान कर वे एक दूसरे के साथ पूरी तरह से आलिंगनबद्ध हो गये और एक दूसरे को बेतहाशा चूमने लग गये। अब वे दीन-दुनिया को भूल कर मर्यादा की सभी सीमाएं लांघने के लिए तैयार हो चुके थे। परन्तु इसी दौरान सुषमा कोई सामान लेने के लिए कमरे के अन्दर आ गई। उन दोनों को उस हालत में देख कर सुषमा की आंखें फटी की फटी रह गईं। उसने उन दोनों को खूब डांट पिलाई। अब वे दोनों शर्मिंदगी से सुषमा से आंख नहीं मिला पा रहे थे। सुषमा ने समझदारी से काम लेते हुए अपने मन में फैसला कर लिया कि इस बात के बारे में अपने ससुराल के सदस्यों को कुछ नहीं बताएगी और शालिनी को अपने घर भिजवा देगी। उसने अपने पिता को फोन कर दिया कि शालिनी की छुट्टियां खत्म होने वाली हैं, अत: इसे कल ही आकर घर पर ले जाओ। अगले दिन रणधीर शालिनी को अपने घर ले आया। सुषमा ने शालिनी और विशाल के इस कृत्य बच्चों की हरकत समझ कर अपने पिता को भी इस बारे में कुछ नहीं बताया। शालिनी के मन पर अपराध बोध तो पड़ ही चुका था। अपने घर आ कर बदले हर माहौल में वह कुछ सामान्य हो गई।

छुट्टियां खत्म हो जाने पर वह भी स्कूल जाने लग गई। स्कूल के माहौल में भी उसके मन का बोझ कुछ हल्का होता चला जा रहा था। परन्तु कुछ दिनों के बाद जब सुषमा अपने मायके में आई तो शालिनी के मन में अपराध बोध बढ़ने लग गया। उसके मन में संदेह उत्पन्न हो गया कि सुषमा अब अपने मां-बाप को शालिनी की करतूत के बारे में बताने के लिए ही यहां आई है। अत: उसमें सिरदर्द होना, गला दबाया जाना, सिर घुमा कर *शेष पृष्ठ 33 पर*

सर आइज़क न्यूटन

– फिलिप केन

आइज़क न्यूटन का जन्म इंग्लैंड के एक छोटे–से गांव में, खेतों के साथ लगे एक घरौंदे में 1642 में हुआ था। एक नन्हा सा उपहार–क्योंकि मां अक्सर बताया करती थी कि आइज़क जन्म की वेला में इतना छोटा था कि उसे क्वार्ट–साइज़ के एक बर्तन में बड़ी आसानी के साथ रखा जा सकता था। मां पहले ही विधवा हो चुकी थी, और अब वह नन्हीं–सी जान नौ महीने से पहले ही पृथ्वी पर आ गई। डाक्टरों ने कह दिया कि इसके ज्यादा जीने की उम्मीद नहीं है। किन्तु बड़ा होने पर उसकी गिनती इतिहास में इने–गिने महान वैज्ञानिकों में की जाने लगी।



गणित में, मैकेनिक्स में, गुरुत्वाकर्षण में, तथा दृष्टि–विज्ञान में न्यूटन के अन्वेषण इतने विस्तृत और इतने मौलिक हैं कि उनमें से कोई भी उसके आविष्कर्ता को इतिहास में अमर कर जाने को पर्याप्त है, भले ही उसने सारे जीवन में और कुछ भी न दिया होता।

मां ने जब पुनर्विवाह कर लिया अभी वह दो बरस का ही था, तो बालक आइज़क को परवरिश के लिए उसकी दादी के यहां भेज दिया गया। बचपन में उसने कुछ भी चीकने पात नहीं दिखाए कि वह कोई अद्‌भुत प्रतिभा लेकर अवतरित हुआ है। हां, अलबत्ता सच यह है कि वह तब भी कुछ न कुछ अपने हाथों खुद करता ही रहा करता था। हवाई चक्की का एक छोटा सा मॉडल उसने तैयार किया था जो कि सचमुच चलता भी था, पानी से चलने वाली घड़ियां, और पत्थर की सिल पर एक सूर्य–घड़ी, जो आजकल रॉयल सोसाइटी लन्दन की सम्पत्ति बन चुकी है। उसे शौक था दिन–रात पढ़ते रहने का, रेखाचित्रों की नक्ल उतारने का, फूल और जड़ी–बूटियों को इकट्ठा करने का।

14 साल का होते ही आइज़क को फिर से अपनी मां के पास ले आया गया, वह फिर विधवा हो गई थी और उसे फार्म संभालने के लिए एक सहायक की जरूरत भी थी। किन्तु कृषि के इन कार्यों के लिए युवा न्यूटन बिलकुल अयोग्य सिद्ध हुआ। उसे इन कार्यों में कोई अभिरुचि नहीं थी, उलटे वह कुछ न कुछ पढ़ता ही पाया जाता या फिर दिवा–स्वप्नों में, या लकड़ी के मॉडल बनाने में, दुनिया की सुध से बेबहरा। मां भी आखिर मान गई कि उसे कालिज में दाखिले के लिए तैयार करना चाहिए। 18 वर्ष की आयु में न्यूटन, तदनुसार, कैम्ब्रिज में पढ़ने के लिए दाखिल हुआ–विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालिज में उसका वेदारम्भ हुआ।

कैम्ब्रिज में चार साल बिताने के बाद 1665 में उसे बी.ए. की उपाधि मिली। कैम्ब्रिज में पढ़ते हुए ही उसकी अपने गणित के प्राध्यापक आइज़क बैरो से मित्रता हो गई। बैरो पहचान गया कि न्यूटन असाधारण प्रतिभा रखता है। उसने उसे प्रोत्साहित भी किया कि वह गणित में ही अपनी योग्यता को विकसित करे।

इंग्लैंड में उन दिनों ब्यूबॉनिक प्लेग की महामारी का आतंक था। आबादी का दसवां हिस्सा साफ हो चुका था। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में छुट्टियां घोषित कर दी गईं और विद्यार्थी अपने–अपने घरों को चल दिए। न्यूटन भी अपनी मां के पास लौट आया और, प्रायः डेढ़ साल तक अपने जन्म–गृह, उस फार्म हाउस, में ही रहा, जब तक कि कैम्ब्रिज में फिर से पढ़ाइयां शुरू नहीं हो गईं।

खेतों पर गुज़ारे ये 18 महीने विज्ञान के इतिहास में शायद बहुत ही महत्त्व के दिन थे, क्योंकि इन्हीं दिनों न्यूटन ने मैकेनिक्स के मौलिक सिद्धान्त ज्ञात किए, और उनका प्रयोग ग्रह–मण्डल की गतिविधि में भी उसी प्रकार कर दिखाया, गुरुत्वाकर्षण के मूल का अवगमन किया, डिफरेन्शल तथा इन्टैग्रल कैल्क्युलस का आविष्कार किया और दृष्टि–विषयक अपने प्रसिद्ध नियमों का अनुसन्धान किया। शेष जीवन अपना अपने इन्हीं नियमों की व्याख्या में, उनके पल्लवीकरण में तथा क्रियात्मक प्रयोगों में गुज़ारा। किन्तु बौद्धिक सर्जन को उसकी वैज्ञानिक वृत्ति इन्हीं अठारह महीनों में प्रदर्शित कर चुकी थी जबकि वह अपनी उम्र के

23वें साल में से गुजर रहा था।

किन्तु अपने इन विलक्षण अनुसन्धानों व अन्वेषणों को उसने एकदम प्रकाशित नहीं कर दिया। चुप रहने की यह उसकी कुछ तबीयत ही बन चुकी थी जिसके कारण तमाम जिन्दगी उसे किसी न किसी झमेले या वाद-विवाद में उलझे ही रहना पड़ा।

1667 में जब कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय फिर से खुला न्यूटन को पढ़ाने का वहां कुछ थोड़ा-सा काम मिल गया। यहां उसने आशातीत उन्नति की, क्योंकि 26 बरस की उम्र में वह अपने गुरु एवं अभिभावक आइज़क बैरो का उत्तराधिकारी एवं गणित का प्रोफेसर नियुक्त हो चुका था।

बड़े अरसे से न्यूटन प्रकाश के सम्बन्ध में काफी व्यापक पैमाने पर परीक्षण करता आ रहा था। उसने कुछ टेलिस्कोप भी तैयार किए थे, और वह अपने इस सब कामकाज से असन्तुष्ट था कि उसके बनाए ये उपकरण भी जो छाया दूर-लोक की उतारते थे, समकालीन अन्य दूरवीक्षण यन्त्रों की भांति, उनके किनारों में भी कुछ न कुछ रंगीनी-सी आ ही जाती थी। ऐसा क्यों ? और इसी समस्या का समाधान निकालने के लिए उसने प्रकाश की वृत्ति का किंचित् सूक्ष्म अध्ययन किया। एक त्रिभुजाकार प्रिज़्म पर सूर्य की किरणें डालीं। कमरा बन्द करके खिड़की में एक छेद में से ही ये किरणें अन्दर प्रवेश पातीं। उसने देखा कि किस प्रकार वह श्वेत किरण फटकर दूसरी ओर दीवार पर एक सुन्दर सतरंगिनी बन जाती है। सातों रंगों में भी एक निश्चित कम था-लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, जामुनी और बैंगनी।

अब उसने ऐसा किया कि सिर्फ एक ही रंग- मान लो, बैंगनी, दीवार पर पड़े, बाकी रंग आगे न आने पाएं। यह बैंगनी रंग की किरण अब, एक-दूसरे प्रिज्म में से गुजारी गई। न्यूटन ने देखा कि इस बैंगनी किरण की दिशा तो कुछ बदल जाती है किन्तु प्रिज्म में से दोबारा गुजरने पर उसके रंग में फर्क नहीं आता, वह अब भी बैंगनी ही रहती है। यही परीक्षण उसने हर रंग से बार-बार करके देखा। सफेद किरण से एक बार विभक्त होकर ये रंग और आगे अब, नहीं फटते थे। हां, दोबारा प्रिज्म में से गुज़ारने पर हर रंग की दिशा में एक और विशेष और अलग ही अन्तर आ जाता है। न्यूटन का निष्कर्ष बड़ा सरल, यद्यपि आश्चर्यकारी था कि सूर्य की श्वेत किरण वस्तुतः सातों रंगों का एक समास है। प्रिज्म का शीशा इन सातों को अलग-अलग दिशान्तरण दे देता है, जिससे ये अलग-अलग फट जाते हैं।

इन परीक्षणों के आधार पर न्यूटन इस परिणाम पर पहुंचा कि ऐसा लेन्स बना सकना असंभव है जिसमें कि रंगीनी की यह झालर-सी ज़रा भी न आए। उसने सोचा कि यदि लेन्सों का प्रयोग ही न किया जाए, तो ? और एक रिफलैक्टिंग टेलिस्कोप ईज़ाद किया गया- जिसमें तारों की रोशनी को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने के लिए धातु-विर्निमत प्याले की शक्ल का, एक दर्पण इस्तेमाल किया जाता है। क्योंकि इस किस्म के टेलिस्कोप में रोशनी को शीशे में गुज़ारना ही नहीं पड़ता-किरण के अंशों को अलग-अलग दिशा ग्रहण नहीं करनी पड़ती और इसीलिए वह वर्ण-व्यामिश्रण भी अब नहीं होता। हैरानी तो इस बात पर होती है कि ऐसे लेन्स तैयार करने में जिनमें कि यह रंगीनी का स्पर्श आए ही नहीं, वैज्ञानिकों को एक सदी और लग गई। अलग-अलग किस्म के शीशों को मिला कर बनाए गए लेन्सों में आजकल वह पुराना वर्ण-स्पर्श नहीं आता।

अपने बनाए टेलिस्कोप की सारी आन्तर रचना न्यूटन ने खुद अपने हाथों ही की थी। न्यूटन के दर्पण का व्यास लगभग एक इंच था, जबकि माउण्ट पैलोमार की कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालोजी की वेधशाला में एक रिफ्लैक्टिंग मिरर का व्यास लगभग 17 फुट है।

दृष्टि-विज्ञान के सम्बन्ध में उसके अनुसन्धानों की और यही न्यूटन के प्रथम वैज्ञानिक निबन्ध का विषय था, विद्वज्जगत् ने आलोचना भी कम नहीं की थी और प्रशंसा भी कम नहीं। न्यूटन को अपनी स्थापनाओं के प्रतिपादन में उस युग के योग्यम वैज्ञानिकों, क्रिश्चन ह्यू जेन्स, रॉबर्ट हुक इत्यादि के आक्षेपों का प्रतिवाद करना पड़ा था। इन वाद-विवादों के प्रसंग से ही विज्ञान की प्रणाली के सम्बन्ध में एक नूतन दिशा-संकेत देने का अवसर उसे मिला था कि ''विज्ञान में कुछ भी कार्य करने का सबसे अच्छा, सुरक्षिततम तरीका यही हो सकता है कि पहले तो वस्तुओं के गुणों का अन्तर-वीक्षण मनोयोग के साथ किया जाए और फिर इन गुणों को परीक्षण द्वारा समर्थित करते हुए उनकी व्याख्या में धीरे-धीरे कुछ उपयुक्त स्थापनाएं उपस्थित की जाएं।''

तब न्यूटन की आयु मुश्किल से 30 ही पार कर पाई

थी, किन्तु विज्ञान जगत् में उसकी प्रतिष्ठा एक समीक्षात्मक एवं परीक्षात्मक वैज्ञानिक के रूप में स्थायी हो चुकी थी। आलोचकों के प्रत्याख्यात से वह खिन्न हो चुका था, सो उसने निश्चय कर लिया कि अपनी और गवेषणाओं को वह अब प्रकाशित नहीं करेगा। वैज्ञानिक अनुसन्धान में और नई स्थापनाओं में तो वह पूर्ववत् अब भी लगा रहा, और विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व पार्लियामेंट में करने के लिए भी उसके पास समय निकल आता था।

1684 में विश्व-विश्रुत नक्षत्रविद् एडमण्ड हैली ग्रहों की गतिविधि के सम्बन्ध में केपलर के सिद्धान्तों पर विचार-विनिमय के लिए न्यूटन के पास आया। इस परस्पर दानादान का परिणाम यह हुआ कि हैली को भी पता चल गया कि न्यूटन सभी भौतिक सिद्धान्तों के मूलभूत सिद्धान्त - ब्रह्माण्ड-व्यापी सामान्य गुरुत्वाकर्षण के अंगांग की स्थापना कर चुका है। हैली ने न्यूटन को प्रेरित किया कि इन अन्वेषणों को प्रकाश में लाना चाहिए और न्यूटन को कोई फालतू कठिनाई न हो इसलिए (यद्यपि हैली खुद कोई अमीर आदमी नहीं था) वह यह भी मान गया कि मुद्रण का सारा खर्चा वही उठाएगा।

परिणाम-'फिलासोफियाए नेचरलिस प्रिंपीपिया मैथमेटिका' का प्रकाशन तीन खंडों में, युग की वैज्ञानिक भाषा लैटिन में, प्रस्तुत हुआ, जिसका अनुवाद कुछ-कुछ यूं हो सकता है-'विज्ञान के गणनात्मक सिद्धान्त।' प्रिसीपिया-विश्व के इतिहास में एक प्रस्थानबिन्दु, 'प्रिंसीपिया'- का प्रतिपाद्य यह है कि गति मात्र - वह गति धरती पर हो, आकाश में ही कहीं हो-एक ही नियम-शृंखला में बद्ध है, एक ही नियम में अनुस्यूत है।

न्यूटन के गति के नियमों की रूप-रेखा 'प्रिंसीपिया' में प्रस्तुत है। पहला नियम है : अचल स्थिति में पड़ी कोई वस्तु अचल ही पड़ी रहेगी जब तक किसी उसकी उस स्थिति को बलात् परिवर्तित नहीं कर दिया जाता; और गति की स्थिति में प्रवर्त्तमान कोई भी वस्तु उसी गति से निरन्तर चलती ही रहेगी जब तक कि उसकी उसी स्थिति में कोई बलात् परिवर्तन नहीं ले आया जाता। न्यूटन ने अनुभव किया कि किसी भी वस्तु को चलायमान करने के लिए वह वस्तु चाहे वृक्ष से गिरता कोई फल हो या समुद्र में आया ज्वार हो, स्थिति परिवर्तन के लिए-शक्ति की, बल की, आवश्यकता होती है। ज़रा सोचिये-जिस गाड़ी में हम यात्रा कर रहे हैं, सहसा रुक जाए तो क्या होगा? क्योंकि हमारे शरीर में तो अभी वही गति है, हम नहीं रुक सकेंगे (अगर हमारा सिर सामने की सीट में से एकदम टकरा नहीं जाता)। इन तथ्यों का प्रत्यक्ष तो लोग पहले भी करते आए थे किन्तु न्यूटन ने उन्हें, गणित के नियमों के अनुसार, एक 'सूत्र' का रूप दे दिया।

गति के दूसरे नियम में प्रतिपादित किया गया है कि-गति में परिवर्तन किस कदर आ रहा है, यदि हमें यह पता चल जाए तो, हम उस परिवर्तन के लिए वांछित शक्ति का परिमाण भी जान सकते हैं। गति में परिवर्तन की इस नियमितता को विज्ञान में आरोहवरोह (एक्सिल्रेशन) कहते हैं-जिसका अर्थ गति में घटती, बढ़ती, दोनों, हो सकती है। उदाहरण के तौर पर एक मोटरगाड़ी को 25 मील फी घंटा की रफ्तार पर जाने के लिए ज्यादा ताकत की जरूरत होती है बजाय उस गाड़ी को उतने ही वक्त में शून्य से 15 मील की घण्टा की रफ्तार में ले आने के लिए।

दूसरे नियम का एक ओर निष्कर्ष यह भी निकलता है कि 60 मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चली जा रही एक मोटर को दस सैकण्ड के अन्दर अन्दर रोकने के लिए वही ताकत आवश्यक है जो 30 मील की रफ्तार से चली जा रही उसी गाड़ी को 5 सैकण्ड में रोकने के लिए अपेक्षित होगी।

गति की तीसरा नियम यह है कि हर भौतिक क्रिया की 'प्रतिक्रिया' अवश्यम्भावी है और यह प्रतिक्रिया जहां परिमाण में 'क्रिया' के तुल्य होगी वहां दिशा में उसकी विरोधी भी होगी। इस एक नियम के कितने ही उपयोग हैं जिनमें सबसे अद्भुत संभवत: रॉकेटों की उड़ान में प्रत्यक्ष होता है : उधर गरमागरम गैसें पीछे की ओर निकलनी शुरू होती हैं और, इधर, रॉकेट आगे की ओर चलना शुरू कर देता है। या फिर अपने बगीचे में छिड़काव करते हुए शाम को देखें कि किस तरह, जैसे-जैसे पानी नॉज़ल से बाहर की ओर निकलता है, नॉज़ल खुद चक्कर करता हुआ पीछे की ओर जा रहा होता है।

और अकेला गुरुत्वाकर्षण का व्यापक नियम शायद इन सब सिद्धान्तों से कहीं अधिक आश्चर्यकारी था। न्यूटन ने इसमें प्रतिपादित किया कि पृथ्वी का हर कण हर दूसरे कण के साथ, जैसे एक खिंचाव के द्वारा, बंधा हुआ है। धरती जहां पेड़ पर लदे फल को अपनी ओर खींचती है,

वहां फल भी धरती को अपनी ओर खींच रहा होता है। यह नियम ग्रह-नक्षत्रों पर भी उसी तरह लागू होता है: सूर्य पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है, पृथ्वी चन्द्रमा को और चन्द्रमा पृथ्वी को। गणित के एक सूत्र में यही बात प्रस्तुत करनी हो, तो दो वस्तुओं का यह परस्पर आकर्षण दो बातों पर निर्भर करता है: एक तो इस पर कि दोनों चीज़ें कितनी भारी हैं और दूसरे इस पर कि उनमें निकटता व दूरी कितनी है।

'प्रिंसीपिया' के दूसरे भाग में प्रथम भाग की कल्पनाओं को पल्लवित भी किया गया है और कुछ नये विचार-गति के अवरोध के सम्बन्ध में... भी आए हैं। यहां, उदाहरणतया, न्यूटन ने सुझाया है कि समुद्र में जहाज बिना किसी प्रकार की रुकावट के चुपचाप चलता चल सके इसके लिए उसकी शक्ल कैसी होनी चाहिए। पुस्तक के इसी भाग में तरंगों की गति का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है जिसका समर्थन आधुनिक विज्ञान अक्षरश: कर चुका है, क्योंकि आज के युग में, भौतिकी को, उसकी आवश्यकता बहुत अधिक है।

ग्रन्थ के तीसरे भाग को मानवबुद्धि का एक महान चमत्कार माना जाता है। पृथ्वी पर प्रत्यक्षित वस्तुओं की गतिविधि के अध्ययन द्वारा न्यूटन गति तथा गुरुत्वाकर्षण के मौलिक सिद्धान्तों पर पहुंचा और दोनों ही नियमों को सूर्य की परिक्रमा कर रहे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर अभिव्याप्त देख गया : इन्हीं के द्वारा सूर्य तथा पृथ्वी के परिमाण तक को सदा के लिए माप-तोल कर रखा गया! गणित के आधार पर वह यह भी दरशा गया है कि ध्रुवों पर धरती चपटी क्यों होती है, और भूमध्यरेखा पर उभरी हुई क्यों ? चन्द्रमा के परिक्रमण मार्ग में ये अनियमितताएं क्यों आती हैं ? क्योंकि सूर्य का भारी-भरकम परिमाण उसे निरन्तर अपनी ओर खींच रहा होता है। सूर्य और चन्द्रमा, दोनों, समुद्रों को अपनी-अपनी ओर आकृष्ट करते हैं-इन ज्वार-भाटों की गणना भी गणित के दो एक सरल नियमों द्वारा की जा सकती है।

दो वस्तुओं में परस्पर आकर्षण कितना होता है-न्यूटन का गणित सही-सही बता सकता था। किन्तु इस गुरुत्वाकर्षण का कारण क्या होता है ? इस प्रश्न पर वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था। ''हमारे लिए बस, इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि गुरुत्वाकर्षण कुछ है जो हमारे निर्दिष्ट इन 'नियमों' के अनुसार सक्रिय होता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की, समुद्रों की, गतिविधि की व्याख्या करने के लिए पर्याप्त है।''

वैज्ञानिक के तौर पर-न्यूटन की ख्याति का मुख्य आधार उस युग में 'प्रिंसीपिया' थी यद्यपि कुछ और निबन्ध भी उसने लिखे, विशेषत: दृष्टि-विज्ञान के सम्बन्ध में और प्रकाश के सम्बन्ध में तथा कैल्क्युलस का आविष्कार भी किया।

1699 में उसे टकसाल का 'मास्टर' बना दिया गया और उसके पर्यवेक्षक में सिक्कों की बनावट में कुछ सुधार किए गए ताकि उनकी नकल न की जा सके। 1703 में उसे रॉयल सोसाइटी का प्रेज़िडेण्ट चुना गया जहां वह मरने तक कायम रहा। 1705 में महारानी ऐनी ने उसे सर की उपाधि प्रदान की।

1727 में सर आइज़क की मृत्यु हुई। तब उसकी आयु 85 वर्ष थी। वैस्ट मिन्स्टर ऐबे में उसकी अंत्येष्टि सम्पन्न हुई। युगों में ऐसी प्रतिभा कभी-कभी जन्म लेती है। किन्तु उसने स्वयं अपने पूर्वाचार्यों का ऋण स्वीकार करते हुए कहा था, ''अगर मैं कुछ भी आगे देख सका हूं तो वह दिग्गजों के कन्धों पर खड़े होकर ही।''

पृष्ठ 29 का शेष खेल आ जाना इत्यादि मानसिक रोगियों वाले लक्षण उत्पन्न होना शुरू हो गये। गांव के डॉक्टर की दवाई से तथा बाहर के अस्पताल में दाखिल कर इलाज करवाने पर भी जब उसे कोई आराम नहीं आया तो अंधविश्वासी मानसिकता के कारण घर वाले उसे बाबाओं की चौंकियों पर ले जाने लग गये। चौंकियों पर जाने से वहां के माहौल के प्रभाव में उसने सिर घुमा कर खेलना शुरू कर दिया। जब एक दो बाबाओं ने चौंकियों पर उसकी चिमटों के द्वारा पिटाई कर दी तो शालिनी की हालत और अधिक खराब हो गई।

जब वे शालिनी की समस्या का मनोवैज्ञानिक काउंसलिंग द्वारा समाधान करवाने के लिए मेरे पास लेकर आए तो मैंने मनोवैज्ञानिक ढंग से उसका हौसला बढ़ाया और उसे पिछली गल्तियों को भूल कर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए उसे प्रेरित किया तो उसके मन में से अपराधबोध ख़त्म हो गया। उसके बाद वह सामान्य जीवन व्यतीत कर रही है।

नोट-यह एक सत्य घटना है, परिस्थितिवश पात्रों के नाम बदल दिये गये हैं।

श्रद्धांजलि

लोक से जन तक की पुकार-कवि गदर से हुई प्रकाश चंद्रायन की बातचीत

दो विपरीत दृश्य। पहला नागपुर, दूसरा वरंगल। नागपुर में कार्यक्रम स्थल से प्रस्तुति के पहले लोकगायक गदर गिरफ्तार कर लिए गए थे। दर्शकों पर प्रहार हुए थे।

चोटिलों में पत्रकार, प्राध्यापक और बुद्धिजीवियों के साथ लोकगायक संभा जी भगत भी थे। पुलिस ने सांस्कृतिक कार्यक्रम विफल कर दिया था, जिसका प्रतिरोध प्रबुद्ध नागरिकों ने किया था। ऐसा ही एक कार्यक्रम पुणे में भी हुआ था। दर्शकों में फिल्म अभिनेता अमोल पालेकर भी थे, जिस पर प्रशासन ने नाखुशी जताई थी तो पालेकर ने कहा था कि वह देखने गए थे कि गदर की प्रस्तुति देखना अविस्मरणीय अनुभव रहा। बनावट से दूर, न मंच सज्जा न देह विन्यास। लोक और माटी में रचा बसा। जीवन, समाज और सत्ता के अंतर्विरोधों को उजागर करता हुआ और सबसे बढ़कर प्रतिरोध की चेतना से लैस करता हुआ। यही दृश्य वरंगल में दिखा, जब गदर गंवई कमकर की वेशभूषा में गा रहे थे, जिसका हिंदी अनुवाद प्रस्तुत है।



''आदमी द्वारा आदमी से, आदमी की बात ही महत्त्वपूर्ण है। मानवीय कला ही जीवित रहती है। हर समय में कुछ न कुछ तकनीक रहे हैं, लेकिन कालांतर में वे अवांछित हो गए, जबकि आदमी की निरंतरता बनी हुई है। आदमी का अस्तित्व असंदिग्ध है और सवाल से परे है। इसलिए मानव कला ही सर्वोपरि है और मुक्ति का साधन है।''

रिक्शा चलाने वाले रहीमन्ना,
पत्थर तोड़ने वाले रामन्ना,
ड्राइवर मलन्ना, कुली कोमरन्ना,
हल चलाने वाले दुर्गन्ना,
मोट सींचने वाले मैसन्ना
और रैयतला से विनती है कि
कृपया हमारी बातों को सुनिए।

तेलुगु में यह कव्वाली पंद्रह हजार की प्रतिनिधि सभा और लाखों की जन रैली में लोक कलाकार गदर और जननाट्य मंडली के सह कलाकार गा रहे थे। अवसर था मध्य 1990 में तत्कालीन आंध्र प्रदेश के वरंगल में रैयतु कुली संघम का तीसरा खुला अधिवेशन। तत्कालीन एन.टी. रामराव सरकार ने प्रतिबंधित संघम को खुला अधिवेशन करने की अनुमति दी थी। इस अधिवेशन में जन नाट्य मंडली के शिखर लोकनर्तक गायक गदर (गुम्मड़ि विट्ठल राव) ने अपनी जनगीतों, कव्वालियों, नृत्यनाटिका की लोकप्रिय प्रस्तुति दी थी, जिसमें उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता रहती थी। उन्होंने 250 गीतों, दो नृत्य नाटिकाओं (रंगलजंडा और असम) की रचना की थी। इनके लोकप्रिय गीत हैं-'गांव हमारा', 'मजदूर मेरे भाई', 'भारत अपनी महान भूमि' आदि। चरवाहा नर्तक के वेश में अपनी प्रस्तुति देते हुए वह दर्शकों से एकाकार हो जाते थे। जब उन्होंने नक्सलवादी आंदोलन के शहीदों को सलाम करते हुए 'अगर वीरूलक जय बोलो' का भावनृत्य किया तो मंच और सहभागी एकाकार हो गए थे। यह प्रायोजित नहीं उत्प्रेरित दृश्य था। उल्लेखनीय है कि कुछ हिंदी भाषी राज्यों में भी नक्सलवादी आंदोलन की उपस्थिति रही है, लेकिन ऐसा लोकगायक उभर कर नहीं आता।

कुल मिलाकर गदर की वैचारिकी और गतिकी लोक से जन की ओर पूर्वार्ध में रही थी। उस अधिवेशन की रिपोर्टिंग के लिए मुझे उस समय दैनिक ''लोकमत समाचार'' दैनिक की ओर से भेजा गया था। उसी समय गदर से कुछ बिंदुओं पर बातचीत भी हुई थी। हालांकि उसके बाद के वर्षों में उनके विचारों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ था और वह मुख्यधारा की राजनीति में उपस्थिति जताने लगे थे। इसके पूर्व वह भूमिगत गतिविधियां करते थे और गिरफ्तार भी हुए थे। इस बातचीत को उनके वैचारिक पूर्वार्ध के संदर्भ में ही देखा जाना उचित है क्योंकि उत्तरार्ध में उनकी भूमिका बदल गई थी और वह उस अतीत से संबंध विच्छेद कर चुके थे। **उनकी स्मृत्ति में प्रस्तुत है ''लोकमत समाचार''**

(15 जुलाई 1990) में प्रकाशित बातचीत के अंश :

? इस वामधारा से जुड़ने के पूर्व आपका जीवन कैसा था?

– क्रांतिकारी धारा से जुड़ने के पहले लोगों का जीवन देखकर दुखी होता था। निराश होता था। चूंकि मेरे श्रमिक पिता आंबेडकर के दर्शन से प्रभावित थे, इसलिए मैं भी स्थितियों से दुखी होकर भगवान और बुद्ध की प्रार्थना किया करता था। परेशान जिंदगी के गीत गाता था और रास्ता खोजता था। कुछ समय परिवार नियोजन के सरकारी प्रचार अभियान में कव्वाली गायी, लेकिन बाद में कम्युनिस्ट आंदोलन से जुड़ने लगा। कैनरा बैंक की नौकरी छोड़कर पूरावक्ती कॉडर बना।

? इस धारा से कैसे जुड़े ?

– समाज को समझने की कोशिश करता था। मन में द्वंद्व चलता था कि एक आदमी काम करता हुआ टूट रहा है और दूसरा आदमी लूटता हुआ मजे कर रहा है। उस समय इसका जबाव नक्सलवादी आंदोलन ने दिया। इसी आंदोलन से मुझे राजनीतिक चेतना मिली। श्रीकाकुलम विद्रोह के समय में छात्र था। मैं नए गीत लिखने लगा। विद्रोह के गीत गाने लगा और क्रांतिकारी धारा से जुड़ गया।

? इस धारा में लंबी अवधि तक सक्रिय रहने के दौरान आपको कैसे राजनीतिक और सांस्कृतिक अनुभव हुए हैं ?

– इस धारा ने महान पाठ मुझे दिया है कि जनता ही साहित्य रच रही है। जनता किसी कवि का इंतजार नहीं कर रही है। वह अपना गीत स्वयं लिख रही है उसे अपना गीत गाने के लिए किसी 'गदर' की प्रतीक्षा नहीं है। वह अपना गीत स्वयं गा रही है। जनता से कटे या जनता के विरोधी ताकतों के लिए कला और संस्कृति सीमित मनोरंजन, लोकमानस को प्रदूषित करने का साधन और प्रजा पर आक्रमण है, लेकिन क्रांतिकारी धारा के लिए कला और संस्कृति एक आंदोलन है। जनता अपने आंदोलन की रचना स्वयं कर रही है। आंदोलन को लिख रही है।

? अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए विचार, शैली और शिल्प का कैसा ढांचा तैयार किया है आपने ?

– मैं जनता की बात करता हूं। जनता के विचार को उनके शिल्प और शैली में रखता हूँ। अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ता हूँ। मेरी 'ओगूकथा' और 'बागोत्तम' जनता की ही शैली है। सुब्बाराव पाणिग्रही की 'बुर्राकथा' का शिल्प और शैली जनता ने ही तैयार किया है। कोई भी कलारूप, विचार या विषय को ही संप्रेषित करने के लिए है। जैसे मेरी मंडली गाती है और मैं गाता हूँ–''तो जालिम कौन रे, उसका जुलूम क्या रे।'' इसमें एक विचार है जिसे संप्रेषित करना ही प्रमुख है। शिल्प और शैली प्राथमिक नहीं है। डिस्को या पॉप संगीत में संगीत संयोजन अत्यधिक प्रभावशाली होता है, बहुत बड़बोला, लेकिन विषय के अभाव में वह टिकता नहीं है और कुछ समय बाद वह विस्मृत हो जाता है। वह वर्ग भी उसे याद नहीं रखता जिसके उपभोग के लिए वह रचा जाता है।

? आपने फिल्मों (मां भूमि) में अभिनय किया है और मूलतः जनसंस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय हैं। मानवीय कला और तकनीक नियंत्रित कला की जनोपयोगिता पर आपकी क्या राय है ?

– आदमी द्वारा आदमी से, आदमी की बात ही महत्त्वपूर्ण है। मानवीय कला ही जीवित रहती है। हर समय में कुछ न कुछ तकनीक रहे हैं, लेकिन कालांतर में से अवांछित हो गए, जबकि आदमी की निरंतरता बनी हुई है। आदमी का अस्तित्व है और सवाल से परे है। इसलिए मानव कला ही सर्वोपरि है और मुक्ति का साधन है। मैंने फिल्मों में काम किया है। मां भूमि ऐसी ही फिल्म है। फिल्म और दूरदर्शन काफी सशक्त माध्यम हैं, लेकिन बेहद खर्चीले और तकनीक नियंत्रित। फिल्म की बात तकनीक से आदमी के लिए हैं। उस पर शासक वर्ग का कब्जा है। फिलहाल उस पर हमारा कब्जा नहीं है, इसलिए वहां हमारी बात हो नहीं सकती। मानवीय कला ही जनोपयोगी है। फिल्म में काम करने की मेरी इच्छा भी नहीं है।

? कुछ क्षेत्रों में ऐसी धारणा है कि मौखिक साहित्य में ही जनसाहित्य के तत्त्व जीवित हैं, जबकि लिखित साहित्य को शासक वर्ग ने प्रदूषित किया है।

– बहुसंख्यक जनता के लिए रचित साहित्य ही जनसाहित्य है। साहित्य लिखित हो या मौखिक, उसका सामाजिक उद्देश्य ही प्रमुख है। इसी उद्देश्य के लिए हम सक्रिय हैं। लोगों के गीत को लोकगीत कहते हैं, लेकिन जो गीत लोगों को क्रांतिकारी बनाए, यह क्रांतिकारी गीत है। उद्देश्य से ही

गीत को क्रांतिकारी बनाया जाता है। जैसे आदिवासी जनता इस आशय का यह गीत गाती है – 'दादा लोग आते हैं, हमारा दर्द सुनते हैं। दर्द का कारण बताते हैं, उस रास्ते पर हमें चलाते हैं, हम चलते हैं, हम बढ़ते हैं।' इस गीत का सामाजिक उद्देश्य साफ है। शासक वर्ग दोनों तरह के साहित्य को प्रदूषित करता है और उसका अपने हित में इस्तेमाल करता है। सामाजिक उद्देश्य को अपने हित में जोड़ने के लिए शासक वर्ग लोकधुनों का इस्तेमाल करता है। एक फिल्म में लोकधुन' एक, दो–तीन' का इस्तेमाल किया गया है और उससे प्रदूषण फैलाया गया है। वह वैसे है, जैसे नमक को टाटा का नमक कह कर बेचा गया है।

? शासक वर्ग ने जनजीवन और जनसंस्कृति को काफी प्रदूषित किया है। किस तरह की समांतर गतिविधि से उसे आप रोंकेगे या रोक रहे हैं ?

– शासक वर्ग जनता को जागरूक नहीं होने देना चाहता। देश में काले धन की सत्ता है, लेकिन जनता को इसके बारे में जागरूक नहीं किया जाता। कोई भी विकास शासन को चलाने के लिए किया जाता है, न कि सच्चाई या जागरूकता के लिए। हमें वैसे कंप्यूटर की आवश्यकता नहीं है जो गर्भ में लड़का या लड़की का पता करे। हमें तों अमानवीय व्यवस्था बदलने की आवश्यकता है। हमें रंगीन दूरदर्शन के विकास का नहीं, जनता के जीवन से जुड़ी चीजों का विकास चाहिए। जागरूकता फैलाकर ही हम शासक वर्ग को रोक सकते हैं। चूंकि जनता का चेहरा सभी जगह समान है, जनसंस्कृति भी लगभग एक है, इसलिए हमारी प्रतिरोधक गतिविधि भी एकरूप होगी।

? जननाट्य मंडली के कार्यक्रमों और प्रकाशनों में जनता की कितनी रुचि है ?

– जनता ने जननाट्य मंडली को अपना लिया है। जनता हमारे कार्यक्रम देखती है। हमारे गीत उसकी जुबान पर हैं। मंडली के प्रकाशनों की चार लाख प्रतियां पिछले पांच वर्षो में बिक चुकी हैं। पिछले कुछ माह में प्रकाशनों की मांग बढ़ी है। अभी सात कार्यक्रम हुए और उसमें तीस हजार प्रतियां जनता में गईं। पचास हजार प्रतियों की तुरंत आवश्यकता है। हिंदी में भी ''जंग की पुकार'' का कैसेट जारी हुआ है। इसका प्रिंट भी हुआ है। मंडली जनता की सांस्कृतिक भुजा है। इसके विरोध में आंध्र प्रदेश पुलिस ने पिछले छह साल तक ''भारती'' नामक नाटक करवाया, लेकिन जनता ने उसे अस्वीकार कर दिया।

? अभी आंध्र प्रदेश में क्रांतिकारी राजनीति के प्रति व्यापक समर्थन दिखता है। इस उभार को संगठित और संचालित करने की कोशिश का विश्लेषण कीजिए।

– पुलिस और शासक दल का कहना था कि सीपीआई एमएल (पीपुल्स वार) समाप्त हो गया, लेकिन हमने जान लगा कर इसे बचाया और बनाया।

हमने शहादतें दीं और लोग हमारे साथ हैं। हमारा आंदोलन जिंदा है, क्योंकि हमारा सिद्धांत जिंदा है। हम अकेले नहीं हैं, लाखों लोग हमारे साथ हैं और जनता की राजनीति को, जनता के संगठन को उभरने से कौन रोक सकता है।

? आंध्र प्रदेश और बिहार में नक्सलवादी आंदोलन काफी पुराना है। दोनों में कितनी समानता और असमानता है ?

– भारत के नक्सलवादी आंदोलन में दो प्रमुख भेद हैं। कुछ चुनाव में भाग लेते हैं कुछ बिल्कुल नहीं। कुछ सामाजिक क्रांति चाहते हैं, कुछ नवजनवादी क्रांति। हमारी मान्यता है कि अर्धसामंती और अर्धऔपनिवेशिक भारत में नवजनवादी क्रांति ही यही रास्ता है। चुनाव पूरी तरह जालसाजी है। हम सभी राष्ट्रयीता आंदोलनों का समर्थन करते हैं। हम कहते हैं कि कश्मीर की जनता कश्मीर का भाग्य निर्णय करे। इन मूल दृष्टिकोणों से बिहार में सिर्फ माओइस्ट कम्युनिस्ट सेंटर ही सही संगठन है।

? देश के कई राज्यों में दलित राजनीति मार्क्सवादी लेनिनवादी राजनीति से अलग रही है, क्यों ? क्रांतिकारी धारा में दलितों को जोड़ने के लिए किस आवश्यक नीति की जरूरत है ?

– भारत में जाति समस्या है। जीविका और जाति यहां जुड़ी हुई है। इस जुड़ाव को तोड़ने की जरूरत है। इसके लिए जब तक जाति संघर्ष वर्ग संघर्ष का हिस्सा नहीं होगा तब तक क्रांति सफल नहीं होगी। छोटी–छोटी अस्मिताओं का संघर्ष बड़े संघर्ष द्वारा ही सफल होगा। राष्ट्रीयता की लड़ाई भी जब तक भारत की क्रांति से नहीं जुड़ेगी तब तक सफल नहीं होगी। सामाजिक और आर्थिक आंदोलनों को जोड़ कर ही सही, लड़ाई की जा सकती है।

बरास्ता चंद्रमा, मानवता का भविष्य

पंकज बिष्ट

चंद्रमा की सतह पर सफलता पूर्वक चंद्रयान उतारने के लिए देश के उन वैज्ञानिकों, तकनीशियनों को हार्दिक बधाई, जो इस परियोजना से जुड़े हैं। इसके जो वैज्ञानिक और राजनीतिक लाभ हैं वे तो खैर हैं ही, पर हमारे समाज के लिए, जो पिछले एक दशक से धार्मिकता की जकड़ में है, इसका संदेश कहीं ज्यादा बड़ा है। उसे रेखांकित करना भारत ही नहीं, बल्कि विशेषकर तीसरी दुनिया के लिए भी, उतना ही जरूरी है। इस दुर्योग के बावजूद कि इसरो के वर्तमान प्रमुख श्रीधर पणिकर सोमनाथ ने कुछ माह पहले ही कहा था कि आधुनिक विज्ञान के सिद्धांत वेदों से आए हैं और बीजगणित से लेकर अंतरिक्ष तक में पश्चिम ने हमारी नकल की है।

यहां सिर्फ याद दिलाना काफी है कि ज्ञान-विज्ञान कोई स्थिर चीज नहीं है। ज्ञान का संबंध समाज से है और उसका विस्तार इस बात पर निर्भर करता है कि कोई समाज ज्ञान के प्रति किस तरह का रुख अपनाता है। एक तरफ वह समाज है, जो यह मानता है कि ''वह सब कुछ पहले से ही जानता है। उसके यहां सब कुछ पहले से ही था'', तो निश्चित है कि उस समाज की समझ में कोई आधारभूत गड़बड़ है। ज्ञान उसका है जो इसका इस्तेमाल करता है और आगे बढ़ाता है। किसी भी ज्ञान को अंतिम मान कर चलने वाले समाज में विज्ञान का विकास होना तो रहा दूर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी विकास होना संभव नहीं है। ज्ञान के संदर्भ में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि ज्ञान की कोई शाखा कहां से चली, महत्वपूर्ण यह है कि वह कहां तक पहुंची। यानी किसी समाज ने उसे किस गति से अपनाया और कितना आगे बढ़ाया। दूसरे शब्दों में यह एक सतत प्रक्रिया है इसलिए यह, यानी ज्ञान, उन सबका है, जो भी इस प्रक्रिया में शामिल हैं। कहना गैरजरूरी है कि हमारे पड़ोसी एशियाई देश जापान, चीन और कोरिया में जो प्रगति आज नजर आ रही है, उसके मूल में यही दृष्टि है।

''मैं इस सीधे से स्पष्टीकरण पर यकीन करता हूँ कि ईश्वर नहीं है। ब्रह्मांड को किसी ने नहीं बनाया और कोई हमारी नियति को निर्देशित नहीं करता है।'' – स्टीफेन हॉकिंग

यह रेखांकित करना आवश्यक है कि आज हमारे देश ने जो हो पाया है, उसके संबंध आजाद भारत के नेताओं के आधुनिक दृष्टिकोण और इस दिशा में उनके द्वारा उठाए गए उन कदमों से है, जिनकी स्वाभाविक परिणति के रूप में हमारे सामने, सारी अड़चनों और वैचारिक जड़ता के बावजूद बहुत सारे संस्थान और परंपराएं अभी भी सक्रिय हैं। यानी देश में आज जो कुछ इतनी सरलता और सफलता से हो रहा है वह, पिछले सात दशक पहले शुरू हुए ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के कारण ही संभव हुआ है। स्वयं श्रीधर सोमनाथ इसरो नामक संस्थान के दसवें प्रमुख हैं।

ज्ञान-विज्ञान कोई स्थिर चीज नहीं है। ज्ञान का संबंध समाज से है और उसका विस्तार इस बात पर निर्भर करता है कि कोई समाज ज्ञान के प्रति किस तरह का रुख अपनाता है।

इस उपलब्धि का संबंध उन नीतियों से भी हैं जिन्होंने देश में शिक्षा को सार्वजनिक बनाया और ज्ञान के मंदिर के द्वार सब के लिए खोलें। अगर ऐसा न होता तो यह अचानक नहीं है कि आज दक्षिण से लेकर उत्तर और पूरब से लेकर पश्चिम तक, देश के आम सरकारी/अर्द्ध सरकारी स्कूलों और अपरिचित दूरदराज के कालेजों के विज्ञान के छात्र चंद्रयान जैसे मिशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते नजर आ रहे हैं। यह कम अजूबा नहीं है कि ये युवा मथुरा, मुजफ्फरनगर, खतौली, भिवानी, हिसार जैसे 'काउ बैल्ट' के शहरों के हैं और वहीं के सरकारी स्कूलों और कालेजों से शिक्षा पाए हैं। कुछ आई आई टी के भी हैं, तो कुछ जामिया मिलिया इस्लामिया जैसे सरकारी विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कालेज से पढ़े हैं, पर इनमें से अधिकांश की पृष्ठभूमि मध्य और निम्न मध्यमवर्ग की है। सरकारी कालोनियों और रेलवे जैसे संस्थानों की कालोनियों के सरकारी स्कूलों से निकले बच्चों की भी इस अभियान में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उदाहरण के तौर पर वीर मुतुवेल जो रेलवे के एक तकनीशियन के

सुपुत्र हैं और बिल्लुपुरम, तमिलनाडु की रेलवे कालोनी के स्कूल में जिन्होंने शुरूआती शिक्षा पाई है, आज चंद्रयान 3 परियोजना के निदेशक हैं।

यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि इस मिशन की सफलता में सौ से अधिक मध्य और निम्न मध्यवर्गी महिलाएं वैज्ञानिकों और तकनीशियनों के रूप में जुड़ी हैं। इनमें से कई देश के ऐसे राज्यों और समाजों से हैं जहां औरतों को कुछ ही दशक पहले तक बिना घूंघट के निकलने तक नहीं दिया जाता था। आज इन्हें किसी भी रूप में पौराणिक धार्मिक स्त्रियों की मिथकीय छवि या परंपरा से नहीं जोड़ा जा सकता है, अपने सोहाग चिह्नों के बावजूद, ये आनंदी बाई जोशी, जानकी अम्माल और कमला सोहिनी जैसी वैज्ञानिकों की जीवंत परंपरा की उत्तराधिकारिणी हैं।

धर्म-धर्म का जाप करने वाले भूल जाते हैं कि अगर यह समाज सिर्फ परंपराओं और मान्यताओं तक ही सीमित रहा होता तो जो आज हम कर पा रहे हैं, और जिसका श्रेय वर्तमान सरकार बढ़-चढ़ कर ले रही है, क्या संभव होता ? या फिर इस श्रृंखला में जो आगे होना है, वह सब हो पाता या हो पायेगा ? ये आई आई टी, इंजीनीयरिंग कालेज, मेडिकल कॉलेज, प्रयोगशालाएँ, विश्वविद्यालय आदि अगर नहीं बनाए गए होते और इनमें पढ़ने के रास्ते सब के लिए खुले नहीं होते तो क्या ये निम्न और निम्न-मध्यवर्ग से आने वाले लोग श्रीहरिकोटा में जिस आत्मविश्वास और स्वाभिमान से भरे नजर आ रहे थे, नजर आ पाते ? संभव है तब वहां काम करने वाला भी कोई न मिलता क्योंकि उच्च व उच्च मध्यवर्ग के हमारे युवा सीधे ही अमेरिका पहुंच जाते हैं और असंभव नहीं कि नासा और एलन मस्क की कंपनी ''स्पेस एक्स'' में सेवा प्रदान कर रहे हों।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि शिक्षा का बढ़ता व्यवसायीकरण और निजी क्षेत्र का हर चीज में दखल अंततः इस देश के अधिसंख्य निम्न और निम्न-मध्यवर्ग के लिए भविष्य के सारे रास्ते बंद करने जा रहा है। अभी तो ग्रेजुएशन कर बच्चे डिलिवरीमैन बन पा रहे हैं, वह समय दूर नहीं जब उन्हें ऐसे काम के लिए भी दर-दर भटकना पड़ेगा। पर तब इस देश में प्रतिभा का अकाल भी हो जाएगा। यह बात और है तब शासकों की सेवा ए आई यानी आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस कर रहा होगा। खैर....

दूसरा पक्ष

कुछ सवाल भी हैं ?

सबसे बड़ा यह कि आखिर ऐसा देश जहां आज भी लगभग 12 प्रतिशत जनता को दो जून की रोटी नसीब न हो, वहां अंतरिक्ष अनुसंधान पर खरबों रुपए क्यों खर्च किए जा रहे हैं ? क्यों सोचा नहीं जा रहा है कि यह पूंजी समाज के सम्यक विकास के काम लगे? यह सवाल एक मायने में दुनिया के विकसित देशों, विशेषकर अमेरिका से भी पूछा जाना चाहिए कि वह ऐसा क्यों कर रहा है जब दुनिया में भुखमरी हर दिन बढ़ रही हो?

अगर हमें मनुष्य की आधारभूत प्रवृत्तियों को समझना है तो यह भुलाया नहीं जा सकता कि मनुष्य भी अंततः पृथ्वी के अन्य प्राणियों की तरह का एक प्राणि है। उसकी आधारभूत जरूरतें वही हैं जो किसी भी प्राणि की होती हैं। उसके और भी बहुत से काम, जैसे रोटी की तलाश करना भी, ठीक वैसा ही है जैसा इस पृथ्वी के अन्य प्राणि करते हैं-पेट भरने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाना। इसके बावजूद कि मानव ने अपने जीवनयापन के लिए कई तरीके निकाल लिए हैं। वह लगभग स्थायी हो गया है पर उसकी तलाश की प्रवृत्ति यथावत है। इस आदिम प्रवृत्ति का ही भयावह रूप हम उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के रूप में आज तक देख रहे हैं। स्पष्ट है मानव, अपने पूर्वजों की तरह, अब सिर्फ पेट भरने से संतुष्ट हो जाने वाला प्राणि नहीं रहा है बल्कि किसी हिंसक पशु से भी बद्तर हो चुका है।

मानव नाम के प्राणि ने अन्य प्राणियों को ही अपने कब्जे में नहीं किया बल्कि अपनी ही तरह के अन्य मानवों को भी अपना गुलाम बनाया। इसका सबसे भयावह उदाहरण योरोपीयों द्वारा एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के अनेकों देशों के संसाधनों की निर्मम लूट और वहां का औपनिवेशीकरण भी है। अफ्रीका से गुलाम बनाकर लाखों लोगों को जानवरों की तरह रस्सियों और जंजीरों से बांध कर जहाजों में ठूंसकर महीनों की समुद्री यात्रा के बाद अमेरिका और लातीनी अमेरिका ले जाया गया और वहां के निवासियों का कत्लेआम कर उनकी जमीन पर अफ्रीकी और एशियाई गुलामों से खेती करवाई गई। ऐसा ही कत्लेआम आस्ट्रेलिया में हुआ जिसे ब्रिटेन ने अपने अपराधियों से मुक्ति पाने के लिए पूरी तरह अपने समाज के अवांछित

लोगों को सौंप दिया था।

पृथ्वी के संसाधनों का जिस गति से आज मशीनों के माध्यम से शोषण हो रहा है वैसा मानव के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। इसके चलते जो प्राकृतिक उथल-पुथल मची हुई है कहीं आग है तो कहीं अतिवृष्टि; कहीं खानें जल रही हैं तो कहीं पहाड़ ढह रहे हैं और कहीं समुद्र तथा नदियां प्रलय मचा रही हैं। यह बात और है कि जिन लोगों ने यह तबाही मचाई है अब उनके दरवाजों पर भी आग व पानी अपने प्रचंड रूप में पहुंच गया है। मौसम की सारी जानकारी के बावजूद ये लोग भी अब अपने को असुरक्षित पा रहे हैं। अब वही लोग अंतरिक्ष में जाने के लिए आतुर हैं। जो विश्वव्यापी हड़बड़ाहट नजर आ रही है उससे साफ है कि अंतरिक्ष की खोज का संबंध मूलत: उन लोगों की इस लालसा से जुड़ा है कि और जो हो, सो हो हमारी और हमारे संतानों की सुरक्षा किसी भी कीमत पर हो।

मनुष्य के एक हिस्से ने अपनी सुविधाओं के लिए दुनिया में जिस तरह की उथल-पुथल मचाई हुई है। उस सबके चलते लगता नहीं कि पृथ्वी अब ज्यादा देर तक रहने योग्य रह पाएगी। यह बात उन सब लोगों को अच्छी तरह पता है जो इस विनाश के जिम्मेदार हैं। वे शातिर लोग हैं जो अब दूसरे ग्रहों में बसने की तैयारी कर रहे हैं। पृथ्वी के हर संभव संसाधनों का उपयोग कर दूसरे ग्रहों को तलाशने में लगाया जा रहा है। अगर ऐसा नहीं है तो फिर अंतरिक्ष के नए ठिकानों की तलाश क्यों हो रही है ? दूसरा रास्ता भी तो है, जो पृथ्वी को बचाने का है। पर तब विशेषकर उन लोगों को जो धरती के अंधाधुंध दोहन के लिए जिम्मेदार हैं, अपने रहन-सहन तौर तरीकों में बदलाव करना होगा। स्पष्ट है कि यह उन्हें गवारा नहीं है। लगता है सारी दुनिया का सत्ताधारी वर्ग अब पृथ्वी से उम्मीद छोड़ चुका है। चंद्रयान-दो के चंद्रमा पर उतरने के दो दिन बाद ही एलन मस्क की कंपनी स्पेस एक्स और अंतरिक्ष के क्षेत्र में काम करने वाली अमेरिकी सरकारी कंपनी नासा ने मिल कर जो अंतरिक्ष यान छोड़ा उस में अमेरिका के अलावा डेनमार्क, रूस और जापान के अंतरिक्ष यात्री (एस्ट्रोनॉट) हैं जो वहां रह रहे यात्रियों की जगह लेंगे और स्वयं अगले छह माह इंटरनेशनल स्टेशन में रहेंगे। महत्त्वपूर्ण यह है कि यह स्टेशन 1998 से अंतरिक्ष में है और इसमें परीक्षण किए जा रहे हैं। यह क्रम 2030 तक जारी रहेगा।

आदमी ने जिस हद तक पृथ्वी का दोहन और उसका विनाश कर लिया है। ऐसे में प्राकृतिक आपदाओं के सिलसिले का रुक पाना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में दुनिया में शांति रह पाएगी यह भी शंकास्पद है। ये बातें दुनिया का शासक वर्ग अच्छी तरह से जानता है। ऐसी स्थिति में जो विकल्प रह गया है वह यही कि इस पृथ्वी की जनसंख्या का एक भाग चांद या मंगल या फिर और किसी ग्रह में चला जाएगा। बाकी जो इस भूखी, प्यासी आपदाओं से ग्रस्त पृथ्वी पर रह जाएंगे, वे अंतरिक्ष की कक्षाओं में आये दिन प्रवेश कर रहे यानों को देखते ही रह जाएंगे।

(स्रोत : ''समयांतर'', सितंबर 2023)

अभी पीड़ा का लिखा जाना बाकी है

धर्म ग्रंथो को
आँखों चूमते
विद्वान ने कहा:
जो कहा जा सकता था
कहा जा चुका,
जो लिखा जा सकता था
लिखा जा चुका,
अब शेष नहीं है कहने-लिखने को ।
अब सिर्फ शब्द विलास है ।
स्त्री ने पीछे से आवाज लगाई :
रुकिए ''महाप्रभु''
जल्दी मत करिये
अभी बहुत कुछ कहा जाना बाकी है
अभी स्त्री ने
अपनी बात तो की ही नहीं।
दलित ने कहा:
रुकिए ''विद्वान श्री''
अभी दलित का पक्ष तो सुना ही नहीं आपने
अभी उत्पीड़न द्वेष और हेय हो जाने का हमारा अनुभव
लिखा कहाँ गया है।
पीड़ित ने आवाज लगाई:
अभी पीड़ा का लिखा जाना बाकी है ''महोदय''
अभी आवाज की गर्जना लिखी नहीं गई है
अभी तो सिर्फ याचनाएं लिखी गयी हैं !!

- वीरेंदर भाटिया

कविता

इज्जत

सीमा आज़ाद



औरत हूं मैं

एक इज्जतदार औरत

इज्जतदार हूं
क्योंकि इंसान हूं मैं
तुम्हारी तरह।

इज्जतदार हैं सभी औरतें,
लेकिन हम औरतों की इज्जत
नहीं है वहां,
जहां तुम बताते आए हो।

हमारे शरीर में योनि को 'इज्जत' इसलिए बताते हो तुम
क्योंकि वहां से जन्म लेने वाले
तुम्हारा वंश चलाते हैं,
तुम्हारी संपत्ति का वारिस बनते हैं।
मुंह, कान, भुजा और पैर से जन्म की कहानी पर हा हा हा
योनि ही 'इज्जत' है तुम्हारे लिए।

यह पहली बार नहीं है
कि किसी कामुक ढोंगी ब्रह्मचारी
राजा के दरबारी
न हमें 'प्लॉट' बताया है।

सदियों पहले
इंसान के असभ्य होने की शुरूआत
हमें 'प्लॉट' माने जाने से ही हुई थी,
जब मातृ प्रधानता को रौंदकर
संतति के लिए लिंगों के झंडे गाड़े गए।

धीरे-धीरे लिंग उनके शरीर का नहीं
दिमाग का हिस्सा बन गया।
दिमाग में लिंग फुफकारते लोगों ने
हमारे अंगों को बताया हमारी 'इज्जत'
और हम औरतों को अपने समुदाय को 'इज्जत'।
सच मानो
हमें इंसान से संपत्ति
और इज्जत में तब्दील किए जाने से ही
हमले तेज़ हुऐ हैं हम पर।

सच मानो
यह सभ्य नहीं,
असभ्य समाज में घटित हुआ
कि पुरुषों ने औरतों को इज्जत घोषित कर
उन्हें ढकना शुरू किया।
कपड़े शरीर की जरूरत नहीं,
हमारे उत्पीड़न के हथियार बन गए
अपने कबीले को इज्जत के लिए हम पर कपड़े लादे गए
दूसरे कबीले को अपमानित करने के लिए
हमारे कपड़े उतारे गए।

हमारे शरीर
तुम्हारे युद्धों का 'प्लॉट' बन गए
जिन पर लिंगों के हमले किए गए
और जीत के निशान हमारी योनि में छोड़े गए।

नहीं
आज लोकतंत्र का नहीं
नफरत को संस्थाबद्ध किए जाने का दौर है
देश, वर्ग, जाति के युद्धों का सबसे नंगा दौर
असभ्य राजाओं वाला सबसे वीभत्स दौर
जब हमारे कपड़े
बार बार उतारे जा रहे
तुम्हारे द्वारा निर्धारित इज्जत के अंगों पर
हमले बार बार किए जा रहे।

शेष पृष्ठ 41 पर

प्रश्न–उत्तर

? साँप बैर रखता है ? मंत्र से साँप का जहर उतार सकते हैं, ऐसा हमने देखा है। इस संदर्भ में आपकी क्या राय है ?

– जिस स्थान पर धन होता है, वहाँ भुजंग होता है, यह सच है।

साँप बैर रखता है, मनुष्य का स्पर्श होने पर उसकी आवाज को ध्यान में रखता है; तलवार से सिर काटने पर भी वह उस आदमी को ढूंढकर उसके जूते में बैठता है और उसे काटता है। हल का फाल लगने से नागिन के बच्चे गलती से भी मरें तो, नागन हल चलाने वाले से बदला लेती है, ये सभी मान्यताएं गलत हैं।

? साँप के कान नहीं होते हैं। इसी कारण उसे सुनाई नहीं देता। आवाज सुन नहीं सकता तो बदला कैसे लेगा?

– साँप की कुत्ते जैसी प्राणेंद्रिय नहीं होती हैं। कुत्ता जैसे गंध को सूँघकर मार्ग निकालता है उसी तरह साँप नहीं निकाल सकता। साँप की दृष्टि मंद होती है। तीन फिट से आगे उसे साफ दिखाई नहीं देता है। इसी कारण चेहरा पहचान लेना साँप के लिए असम्भव होता है। साँप के टुकड़े हुए तो दोनों टुकड़े मर जाते हैं। साँप को छोटा–सा भी जख्म हो तो उस जख्म को चींटियां लगती हैं और वह मर जाता है।

? उपर्युक्त सभी कारणों को समझ लें तो साँप के बैर रखने की सम्भावना ही नहीं है।

– मंत्रों से साँप का जहर उतर जाता है; यह घातक अंधविश्वास है। अकेले भारत में हर साल पचहत्तर हजार लोग साँप के काटने से मरते हैं। उनमें से अधिकांश लोगों की जान मंत्रों पर होने वाले अंधविश्वास से होती है।

भारत में मिलने वाले साँपों में से 80 प्रतिशत साँप जहरीले नहीं हैं। महाराष्ट्र में जहरीले साँप की सिर्फ चार ही प्रमुख जातियाँ हैं। नाग, मन्यार, घोणस और फुरसे।

अधिकांश प्रसंगों में व्यक्ति को काटने वाला साँप जहरीला नहीं होता है। अपवादात्मक रूप में जहरीले साँप के काटने पर जहर की शरीर में होने वाली मात्रा व्यक्ति के लिए पर्याप्त नहीं होती है। इसी का लाभ मांत्रिकों मिलता है। जहर की मात्रा अधिक होने पर जहरीले सर्पदंश से व्यक्ति की मृत्यु निश्चित हो जाती है। ऐसे समय बेतुका कारण देकर मांत्रिक जिम्मेदारी टाल देता है।

भुजंग नाम का कोई साँप ही नहीं है। बड़े किसी भी साँप की आयु दस साल से कम होती है। (पाँच से आठ साल) इसी कारण गुप्त धन पर भुजंग डेरा जमाए रहता है यह झूठ है।

साभार–''अंधविश्वास प्रश्नचिन्ह और पूर्णविराम'' किताब। (इस किताब के लेखक डॉ. नरेंद्र दाभोलकर हैं।)

पृष्ठ 40 का शेष

हमलावर धर्म जश्न मनाता है
कि उन्होंने दुश्मन का प्लॉट रौंदा,
पीड़ित धर्म तिलमिलाता है कि
इज्जत चली गई।

इस दौर का असभ्य राजा तो इसे
देश की इज्जत बनाकर आंसू बहाता है।
इन सबकी इज्जत के बीच
हम औरतें कहाँ हैं ?
कहां है हमारी इज्जत
और गरिमापूर्ण जीवन का संवैधानिक हक ?

मैं
एक इज्जतदार औरत
इनकार करती हूं
तुम्हारी इज्जत बनने से,
लिंगों के एकाधिकार से,
तुम्हारे इज्जत के विचार से।

सभ्य दुनिया का रास्ता
इसके विरुद्ध जाने से ही मिलता है।

क्या तुम्हें सभ्य नहीं बनना है ?

– सीमा आजाद

अभिव्यक्ति

शोषित, वंचित व पीड़ित वर्ग की आवाज बुलंद करना लेखन का प्रथम दायित्व



तनवीर जाफरी (पत्रकार)

कलम के सिपाही के नाम से प्रसिद्ध तथा कहानीकार के रूप में भारतीय समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले मुंशी प्रेमचंद ने कहा था कि–'लिखते तो वे लोग हैं जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है विचार है, जिन्होंने धन और भोग विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया है वह क्या लिखेंगे ? मुंशी प्रेमचंद देश की स्वाधीनता से 11 वर्ष पूर्व ही 8 अक्तूबर 1936 को मात्र 56 वर्ष की आयु में ही इस दुनिया को अलविदा कह गए थे। उनके दौर के पराधीन भारत में निश्चित रूप से लेखनी की जरूरतें कुछ और ही रही होंगी। परन्तु उस समय भी इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से देश के शोषित, वंचित व पीड़ित वर्ग की आवाज बुलंद करने की पूरी कोशिश की। उनकी कहानियों की मार्मिकता उसकी भाषा व शैली ऐसी होती थी कि कोई भी सहृदयी पाठक उन्हें पढ़कर अश्कबार हो जाया करता था। लेखन तो आज भी हो रहा है और मुंशी प्रेमचंद के समय से कई गुना अधिक लेखक आजकल सक्रिय हैं। परन्तु वर्तमान लेखन प्रायः पक्षपात पूर्ण, विद्वेष पूर्ण, पूंजीवाद को बढ़ावा देने वाला, सत्ता की चाटुकारिता करने वाला तथा लेखन जैसे पवित्र व ईमानदाराना पेशे को धन और भोग विलास का माध्यम बनाने वाला बनकर रह गया है। पहले जहाँ लेखक एक अलग वर्ग हुआ करता था वहीं आजकल प्रधानमंत्री से लेकर सत्ता से जुड़ा शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो लेखक बना न बैठा हो। सबका एक ही काम है। या तो प्रधानमंत्री के कसीदे पढ़ना या सत्ता का गुणगान करना। आश्चर्य तो इस बात का है कि जिन लोगों के पास प्रधानमंत्री, मंत्री व राज्यपाल जैसे पदों की जिम्मेदारी हो और जनता के करोड़ों रुपए उन पर खर्च होते हों उन्हें लेखन का समय आखिर मिलता ही कैसे है ? परन्तु यह सब कुछ इसी एकमात्र उद्देश्य के तहत किया जा रहा है ताकि सत्ता व सत्ताधीशों के गुणगान के शोर शराबे में शोषित, वंचित व पीड़ित वर्ग की आवाज को दबाने का प्रयास किया जाये।

वास्तविक व जिम्मेदाराना लेखन की जरूरतों को महसूस करते हुए ही शायद मुंशी प्रेमचंद ने लखनऊ में 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के स्थापना सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। उनका मानना था कि 'साहित्यकार का मकसद केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है– उसका दरजा इतना न गिराइये। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाई हुई चलने वाली सच्चाई है।' उनके दौर में भी साम्प्रदायिकता, नफरत फैलाने और देशवासियों को धर्म व जाति के नाम पर बाँटने का काम कर रही थी। वे इन खतरों के विराट स्वरूप से भी शायद उसी समय बाखबर भी थे।

प्रेमचंद साम्प्रदायिकता को समाज का एक ऐसा कोढ़ समझते हैं जो अपना छोटा सा दायरा बना कर सभी को उससे बाहर निकाल देती है।' उस दौर में प्रेमचंद की बातें आज कितनी प्रासंगिक हैं उनके इन विचारों से पता चलता है। वे कहते थे कि 'साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी–अपनी संस्कृति को अछूते समझ रहे हैं। यह भूल गए हैं कि अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं हिन्दू संस्कृति और न कोई अन्य संस्कृति। 'अब संसार में केवल एक ही संस्कृति है, और वह है आर्थिक संस्कृति...' इसी तरह संस्कृति और धर्म के घालमेल को लेकर भी उनका मत स्पष्ट था। वे कहते थे, 'संस्कृति का धर्म से कोई संबंध नहीं। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है लेकिन ईसाई संस्कृति और मुस्लिम या हिन्दू संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है...' मुंशी प्रेमचंद की मानवतावादी सोच को आगे बढ़ाने वाले व उन्हीं के द्वारा सिंचित 'प्रगतिशील लेखक संघ' का तीन दिवसीय 18वां राष्ट्रीय अधिवेशन पिछले दिनों मध्य प्रदेश की 'संस्कारधानी' के नाम से प्रसिद्ध हरी शंकर परसाई के शहर जबलपुर में

संपन्न हुआ। देश के लगभग सभी प्रांतों से आए हुए लेखक, चिंतक, विचारक, कवि व कलाकारों ने इस अवसर पर देश के समक्ष मौजूद साम्प्रदायिकता, जातिवाद व पूंजीवाद जैसी चुनौतियों के प्रति अपनी गहन चिंता व्यक्त की। संघ के सदस्यों ने जबलपुर घोषणा पत्र जारी किया जिसमें स्वाधीनता आंदोलन द्वारा संजोयी गई संविधान संरक्षित समता, समानता और धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र के मूल्यों को बचाने का संकल्प लिया। अधिवेशन में शायद ही कोई वक्ता ऐसा रहा हो जिसने साम्प्रदायिकता की आग में जलते हुए मणिपुर और हरियाणा के मेवात के नूह क्षेत्र में फैलाई गयी साम्प्रदायिक हिंसा का उल्लेख न किया हो। 'प्रगतिशील लेखक संघ' ने घोषणा पत्र में हिंदुत्ववादी राजनीति के पूंजीवादी संस्थानिक और निगमीय शक्तियों के साथ बन चुके सीधे गठबंधन पर भी अपनी गहन चिंता जताई देश की अस्सी करोड़ से अधिक जनता न्यूनतम जीवन यापन सुविधाओं के लिए संघर्षरत है।

शिक्षा एवं चिकित्सा संबंधी दायित्वों से राज्य ने अपना पल्ला झाड़ लिया है। संविधान द्वारा संकल्पित कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का परित्याग कर समूचे देश को एक व्यावसायिक परियोजना में तबदील किया जा रहा है। न्यायिक व चुनाव आयोग सरीखी अन्य संवैधानिक संस्थाओं को निशाने पर लेकर उन्हें कमज़ोर किया जा रहा है। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बड़े हिस्से को निष्प्रभावी और पालतू बनाया जा चुका है। सोशल मीडिया भी अब कड़े नियंत्रण में है। साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था का अनुगमन कर वैकल्पिक तथा स्वतंत्र नीतियों वाले राज्य की भूमिका का परित्याग कर दिया गया है और इन सब मुद्दों से जनता का ध्यान भटकाने के लिये गोरक्षा, लव जेहाद, हिजाब, गंगा, गीता सरीखे भावनात्मक मुद्दों को उछाला जा रहा है। समाज को धर्म, जाति व निजी विश्वासों के आधार पर विभक्त करने के सारे हथकंडे अपनाये जा रहे हैं, जिस पर सत्ता की तरफ से कोई अंकुश तो दूर, प्रत्यक्ष-परोक्ष समर्थन ही नजर आता है। असहमति और प्रतिरोध की आवाजों को अर्बन नक्सल, टुकड़े-टुकड़े गैंग, अवार्ड वापसी गैंग सरीखे नकारात्मक नामों से लांछित करते हुए उनके बारे में तमाम झूठ फैलाए जा रहे हैं।

जिस तरह शोध संस्थाओं, उच्च शिक्षण संस्थानों, विश्वविद्यालयों आदि में ज्ञानार्जन व स्वतंत्र बौद्धिक संवाद का वातावरण प्रदूषित कर उन्हें संकीर्ण, एकल प्रभुत्ववादी सोच में ढालने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही भारतीय समाज की बहुभाषी, बहुलतावादी व समावेशी संस्कृतिक सम्पदा की अनदेखी कर उसे एकांगी बनाया जा रहा है। बुद्ध, बसवन्ना और कबीर की परंपरा को मिटाया जा रहा है। गांधी, नेहरू व अम्बेडकर सरीखे राष्ट्र नायकों की छवि को संदर्भ च्युत कर धूमिल किया जा रहा है। ऐसे में निःसंदेह शोषित, वंचित व पीड़ित वर्ग की आवाज बुलंद करना साहित्य लेखन का प्रथम दायित्व बन जाता है।

मंदिर भी ले लो, मस्जिद भी ले लो
मगर आदमी के लहू से न खेलो

मंदिर से गर जो खुदा है नदारद
मस्जिद में गर ईश्वर नहीं है
तो फिर आदमी के लिए धर्म क्या है
जहां कत्ल करने के लिए उठते हैं खंजर
खुदा को भी ले लो, ईश्वर को भी ले लो
मगर आदमी के लहू से न खेलो

ये किसके इशारे पे किसकी शरारत
ये किस नींव पर उठ रही है इमारत
ये दो भाइयों को लड़ाते-लड़ाते
कहां ले के आयी है देखो सियासत
वोटें भी ले लो, कुर्सी भी ले लो
मगर आदमी के लहू से न खेलो

जहां चाहिए सर पे छत आदमी को
वहां उठ रहा है-धुआं आसमा से
जहां भूख को रोटियों की जरूरत
वहां बंट रही है जातियां किस दुकां से
तुम राम ले लो, बाबर ले लो
मगर आदमी के लहू से न खेलो

हमें चाहिए न अंधेरा तुम्हारा
हमें चाहिए न सियासत तुम्हारी
हमें चाहिए जिंदगी का उजाला
हमें चाहिए सिर्फ दुनिया हमारी
मंदिर भी ले लो, मस्जिद भी ले लो
मगर आदमी के लहू से न खेलो

*** - राजेश सूद**

एक रिपोर्ट

बच्चों पर अपने सपने या स्टेटस सिंबल ना लादो

पिता आई.आई.टी. में पढ़े, मां डॉक्टर; बेटे की खुदकुशी के एक साल बाद बोले-वो हारा नहीं, हमारे 'स्टेटस टैग' ने हारने को मजबूर किया।

हर–माता–पिता बच्चों को सफलता के शिखर पर देखना चाहते हैं। इसी चाहत में अपने सपने मासूम के सिर पर लाद देते हैं। बिना यह जाने कि उसकी क्या इच्छा है ? दबाव बढ़ता है तो वही बच्चा जिंदगी खत्म करना ही आखिरी विकल्प मान बैठता है। जवान होते जिस बच्चे के सपनों को अभी दुनिया दौड़नी थी, अब उसकी यादें अंधेरे कमरे की खूंटी पर टंगी हैं। नोएडा के 20 साल के एक छात्र ने पिछले साल जून में खुदकुशी कर ली थी। तब से डॉक्टर मां और इंजीनियर पिता की जिंदगी भी ठहर गई है... निजता को देखते हुए युवक और उसके माता–पिता का नाम इस रिपोर्ट में नहीं दिया गया है।

पिता कहते थे - मैंने तुम्हें सबसे अच्छा स्कूल, अच्छी जिंदगी दी, बस एक चीज चाहता हूँ; यही बात जिंदगी निगल गई।

नोएडा में बादलों की वजह से सुबह 10:30 बजे भी अंधेरा सा है। एक डॉक्टर दूसरे फ्लोर पर एक कमरा खोलती हैं। यहां हल्का फटा हुआ पोस्टर है, जिस पर लिखा है–'अपने रिस्क पर अंदर आएं।' मैं लाइट का स्विच दबाते ही पति पर चीखती है–'मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि बल्ब बदल दो। जाओ नया बल्ब लेकर आओ।' यह कमरा पिछले साल आईआईटी एंट्रेंस की पढ़ाई के दबाव में खुदकुशी कर चुके युवक का है। मां डॉक्टर हैं। पिता आईआईटी में पढ़ चुके हैं। अब एक कामयाब इंजीनियर हैं। पत्नी की डांट के बाद तेज बारिश में ही बल्ब लेने चले जाते हैं।

पत्नी स्मार्टफोन से फ्लैशलाइट ऑन करती है। 'ये मेरे बेटे का कमरा है। वह इसे गुफा कहता था। ये उसका स्टडी टेबल।' मिट्टी से सनी दो टीशर्ट बेड पर पड़ी हैं। स्टडी टेबल पर कुछ नोट्स चिपके हैं। कोचिंग का समय, कुछ प्रेरक विचार। 'ये कमरा उसे ऐसे ही पसंद था। प्लीज कोई चीज छूना मत। न हम छूते हैं, न छूने देते हैं।' तभी पति आ जाते हैं। कमरा रोशनी से भर जाता है। पति कुर्सी खींचकर एडजस्ट करते हैं। पत्नी चीखती है–'तुम उसकी कुर्सी क्यों उठा रहे हो ? उसकी कोई चीज तुम कतई नहीं छुओ।' पत्नी कहती है – 'तुमने (पति) उसे आई आई टी की तैयारी के लिए मजबूर किया।' बचाव में पति कहते हैं– 'उसके अंदर मेरा खून था। वह गणित और कम्प्यूटर में अच्छा था। मैं जानता था, वह आई आई टी–क्रैक कर लेगा।' दरअसल, कोचिंग के कुछ महीने में ही बेटे को एंग्जाइटी अटैक आने लगे थे। अब वह गिटार भी नहीं बजाता था। वह अपना बैंड बनाना चाहता था।

मां कहती हैं–'वह बी टी एस बैंड का बड़ा फैन था। उसका एक दोस्त संगीत की पढ़ाई के लिए विदेश चला गया। लेकिन हमारा बेटा घंटों कोचिंग में बिताता या खुद को अपने कमरे में बंद कर देता।' उसने म्यूजिक पढ़ने की इच्छा जताई तो पिता गुस्से से फूट पड़े। उसका गिटार पटककर तोड़ दिया। कहा–'मैंने तुम्हें सबसे अच्छा स्कूल, अच्छी जिंदगी, अच्छा खाना दिया। मैं सिर्फ एक चीज चाहता हूँ।' उसके बाद फिर एक बार झगड़ा हुआ। पिता ने कहा–'तुम्हें आसान जिंदगी मिली है। हमने संघर्ष किया और आज इस मुकाम पर हैं। हमारा बेटा एक फेलियर है। इस पर माँ टूटती आवाज में कहती हैं–'तुम फेल हो गए। मैं फेल हो गई। हम फेल हो गए। वो हारा नहीं, हमारे स्टेटस ने उसे हारने को मजबूर किया।' पिता टोकते हैं–'तनाव सबको झेलना पड़ता है। वह नहीं झेल पाया।' गुस्से में मां कहती हैं–'तुम अब भी ऐसी बातें कर रहे हो ? उसका अपमान बंद करो।' गश खाकर जमीन पर गिरती है। सिसकती है–'अब वह कभी वापस नहीं आएगा। वो चला गया।' पति ने सांत्वना देने की कोशिश की। हालांकि, वह भी टूट चुके हैं।

–फोर्ब्स इंडिया

> हमारे जानी दुश्मन का नाम हैं
> अज्ञान
> उसे धर दबोचो, मजबूती से पकड़कर पीटो और
> उसे जीवन से भगा दो।
>
> **– सावित्री बाई फुले**

हम लड़ेंगे आखिरी सांस तक

– बिन्दु राम

तोप, टैंक, मिसाइल
न जाने कितने हथियार
किये तैनात हमारी 'सुरक्षा' में
ऐ मेरे हुक्मरान!
पर क्या पता था कि
तुम्हारे ये अचूक अस्त्र
बुझाएंगे अपनी प्यास एक दिन
हमारे ही लहू में सनकर।

मुट्ठी भर पूंजीपतियों के
अंतहीन लालच के लिए
रौंद डाला तुमने
लहलहाते खेतों को
खलिहानों को
कल-कल बहते झरनों को
कलियों को, बागानों को।

मेंह की तरह बरसती लाठियों से
पानी की बौछारों से
आंसू गैस के गोलों से
वर्दियों की कतारों से
किया हर मुमकिन प्रयास
हमारे हौंसलों को तोड़ने का
लहराते हाथों को मरोड़ने का
पार बसी ना फिर भी जब

'इनामी' तक घोषित कर डाला।
जेलों को तुमने भर डाला।
डाल धूमावरण जोड़ने का
विकास की 'मुख्यधारा' से
बदल डाला तुमने हमारे
स्कूल, मैदानों, अस्पतालों को
कैंप, छावनियों शिविरों में।
ये कैसी लूट मचाई तुमने
दाना तक ना छोड़ा घर में।

अब जब तुमने ठान ही लिया है
हमारी झोंपड़ियों को
खेत-खलिहानों को
दल जंगल जमीनों को
उजाड़ने का फैसला
हमारे इरादों को, संकल्पों को
जज्बे और संघर्षों को
दबाने का फैसला
तो फिर बस बहुत हुआ
अब नहीं चलेगी तुम्हारी मनमानी
हमने भी कर लिया है पक्का इरादा
हर कीमत पर लड़ेंगे तुमसे
जब तक लौटने की
जरूरत बाकी होगी।

जब चीख कविता में जगह मांग रही थी

जिन समयों में
माहौल गर्म था
तुम पहाड़ पर गए हुए थे

जिन समयों में
धर्म का अर्थ हिन्दू
और मजहब का मतलब मुसलमान कहा जाने लगा
तुम्हारे शब्दकोष कोई मांग कर ले गया था।

जिन समयों में
कविता को पहाड़, नदी, जंगल, जमीन में भर उत्साह
चीखना था, लड़ना था
तुम किसी किताब को पवित्र कह
आंखों चूम रहे थे

जिन समयों में
मुल्क की चेतना से ज़हर भरा जा रहा था
तुम्हारी सत्ता के यशोगान गाती हुई किताब
अमेजन पर बिक रही थी

जिन समयों में
निर्वस्त्र घुमाया जा रहा था औरतों को सरेआम
तुम राष्ट्रवाद का स्थापना गान लिखते रहे

जिन समयों में
चीख कविता में जगह मांग रही थी
तुम कविता नहीं कह सके

–वीरेंद्र भाटिया

हमारे अपने

–मा. जयपाल

अंग्रेज चले गए हैं
अब आ गए हैं हमारे अपने
बिल्कुल स्वदेशी
हमारी अपनी शक्ल के
हमारी अपनी नस्ल के
अपनी जात के
अपने धर्म के
रंगरूप भी अपना सा।
हमारे अपने हैं
सो राज कुछ इस तरह से करते हैं
कि अपना-सा लगे अत्याचार भी।
एक तरह से अत्याचार करते ही नहीं जैसे
पुलिस, जेल, लाठी, गोली
यह सब तो देश की सुरक्षा के लिए है
क्योंकि आजकल देश खतरे में है
और खतरा भी देश के लोगों से ही है
तो क्या किया जाए।
तानाशाही भी करते हैं तो बस
राम का नाम लेकर करते हैं
बस उतनी ही जितनी कि रामराज्य के लिए जरूरी है
रामराज्य के लिए इतना तो करना ही पड़ेगा
शहीदों का अपमान करते हैं या सम्मान
पता ही नहीं चलने देते
अपने आदमियों का यही तो फायदा होता है
घर की घर में रह जाती है।
साम्प्रदायिक दंगे होते हैं
तो ये नारे लगाते हैं भारत माता के
बलात्कार होते हैं
तो ये तिरंगा ले आते हैं
गांधी को गोली मारते हैं
तो चरखा चलाने लग जाते हैं
अपने राज का यही फायदा है
गांधी भी अपना और गोडसे भी
सावरकर भी और भगत सिंह भी।
आज ये आजाद हैं
अपना देश है और अपना राज है
राजा भी अपना और प्रजा भी अपनी
भला फिर किसी से क्या पूछना।
किसी को क्या बताना!!

मैं

धर्मों से दूर हूं
अधर्मी
विधर्मी
नास्तिक हूं
मुझे भगवान में विश्वास नहीं है
पता नहीं
वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने
ऐसा कर दिया।
मुझे हर व्यक्ति इंसान
नज़र आता है।
जब धर्म नाम पर
लोग मरते हैं
तब मैं दुखी होता हूं
कि मरने वाले की चिता पर
लोग रोटियां सेकते हैं
जो मर गया
उसके नाम को
खूब बेचते हैं।
हिंसा, खून-खराबा, नफरत
सब मुझे भीतर से जख्मी करते हैं
विचलित हो जाता हूं
और ढूंढता हूं
खोई हुई मानवता को
चेहरों पर
जो डरे हुए और मजबूर हैं
डरी हुई
महिलाएं
लड़कियां
नफरती धमकियां
सोचते-सोचते होता हूं हैरान
जो देखता नहीं इंसान
वह ढूंढता है भगवान

शेष पृष्ठ 47 पर

पृष्ठ 25 का शेष मरने वालों की तादाद भी रहती है जबकि यमुना में विसर्जन पर बैन है।

विसर्जन के दौरान नदियों के अलग-अलग घाटों पर मूर्ति गहरे पानी में ले जाने से भक्त लोग डूब कर मरते रहते हैं, जबकि, हरेक घाट पर चाकचौबंद इंतजाम पुलिस के होते हैं और गोताखोर भी तैनात रहते हैं। इसके बाद भी हादसे ही हो जाते हैं क्योंकि धर्म और दूसरे नशों में डूबे उन्मादी भक्त किसी की सुनते नहीं, आइए देखें ऐसे ही कुछ ताजा हादसे-

- आगरा में विसर्जन के दौरान पोइया घाट पर 5 युवक डूब गए जिन में से संभवत 3 की मौत हो गई क्योंकि 28 सितम्बर की देर रात तक पुलिस को उनकी कोई खबर नहीं मिली थी।

- इसी दिन दिल्ली में विसर्जन के दौरान यमुना नदी में डूबने से 2 सगे भाइयों की मौत हो गई। निठारी में रहने वाला 6 साल का कृष्णा और 15 साल का धीरज मूर्ति विसर्जित करते करते खुद ही विसर्जित हो गए।

-26 सितम्बर को मध्य प्रदेश के दतिया के सिद्ध बाबा मंदिर कैंपस में हुए एक बड़े हादसे में 10 बच्चे विसर्जन कुंड में डूब गए जिन में से 3 मासूम बच्चियां और एक बच्चा बेवक्त काल के गाल में समा गए। कोई भगवान या मूर्ति इन्हें नहीं बचा पाए।

-उत्तर पूर्वी दिल्ली के न्यू उस्मानपुर इलाके में सपरिवार विसर्जन के लिए गए 18 वर्षीय युवक सूरज की मौत 28 सितमंबर को यमुना खादर में डूबने से हो गई। सूरज 4 बहनों का इकलौता भाई था।

-इसी दिन उत्तर प्रदेश के उन्नाव में विसर्जन के दौरान एक छात्र और शिक्षक की डूबने से मौत हो गई। हर बार की तरह देश भर में सैंकड़ों ऐसे हादसे हुए जिन की लिस्ट बहुत लम्बी है।

पिछले साल बिहार के गया में की मूर्ति का विसर्जन करने गए 2 युवक नदी में डूब कर मर गए थे, जबकि 3 नौजवानों को गोताखोरों ने वक्त रहते बचा लिया था। इस पर भी भक्तों ने जम कर प्रशासन को कोसा था। बात समझ से परे है कि प्रशासन की इस में क्या गलती है। बार-बार अपील करने के बाद भी ये नौजवान भक्त गहरे पानी में जा कर मूर्ति बहाने की जिद पर खड़े थे। ऐसे में माता ने इन्हें बुद्धि नहीं दी, उल्टे जान ले ली।

कौन है जिम्मेदार

ये तो कुछ ही उदाहरण थे, वरना मूर्ति विसर्जन में हजारों की तादाद में लोग मारे जाते हैं। आजकल मरने वालों में अधिकांश लोग दलित होते हैं क्योंकि मूर्ति ढोने का मेहनत भरा काम बड़ी चालाकी से उन के सिर पर ही थोप दिया गया है।

जिम्मेदार प्रशासन, सरकार ही नहीं, वह पुजारी भी है जो 8-10 दिन झांकी में बैठ कर पूजा-पाठ, आरती और यज्ञ-हवन करता है लेकिन मूर्ति विसर्जन के लिए जाता नहीं है।

इन लोगों के दिलोदिमाग में यह बात ठूंस-ठूंस कर भर दी गई कि झांकी की मूर्ति जो भी विसर्जित करता है उस पर भगवान ज्यादा खुश होता है। यह खुशी किस तरह ही होती है। यह मौतों से समझ आता है।

विसर्जन के दौरान भक्ति का ढोंग करने वाले लोग खूब हुड़दंग मचाते हैं।

मूर्ति विसर्जन के दौरान मरने वालों में 80 फीसदी बच्चे और नौजवान होते हैं। बेरहम भगवान क्यों इन्हें अपने पास बुला लेता है। इस सवाल का जबाव किसी के पास नहीं। मरने वालों के घर वाले रोते बिलखते रहते हैं और उस घड़ी को कोसते नजर आते हैं जब उन्होंने बच्चों को विसर्जन में जाने की इजाजत दी थी।

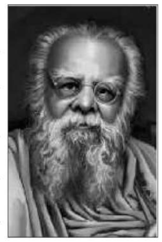
सरकार को चाहिए कि वह झांकियों के शोर, अनाप शनाप पैसों की बरबादी और विसर्जन पर रोक लगाने की पहल करे जिसके चलते हजारों लोग हर साल बेमौत मर जाते हैं। **(साभार-''सरिता'' पत्रिका सितंबर 2023)**

पृष्ठ 46 का शेष

लहू बहाकर
बनाता है जो पहचान
वह कौन सा है भगवान ?
दया, समता, प्रेम, सहनशीलता, स्नेह
ये मुझे दिखते हैं सभी में
मानवता में अथाह विश्वास
क्योंकि
मैं मानव हूं।
कोई नहीं भगवान।

- डा. फूल सिंह

जाति और धर्म के वृक्षों को एक साथ जलाकर राख करना होगा - पेरियार



जाति को धर्म से अलग करना होगा। अगर ऐसा नहीं किया गया और अगर जाति और धर्म आपस में जुड़े रहे, तो दोनों का नष्ट होना अपरिहार्य है। उच्च जाति के धूर्त व्यक्तियों ने अत्यन्त धूर्ततापूर्वक जाति और धर्म को आपस में जोड़ दिया; ताकि उनको अलग करना मुश्किल हो जाए। इसलिए, जब आप जाति को नष्ट करने का प्रयास करते हैं, तो आपको यह डर नहीं लगना चाहिए कि धर्म भी नष्ट हो जाएगा। क्योंकि, ऐसा होना अनिवार्य है।

जाति और धर्म के वृक्षों को एक साथ जलाकर राख करना होगा। लेकिन, इसमें एक समस्या भी है। धर्म वेदों, पुराणों आदि से आबद्ध है। इसलिए, उसे पहले वेदों और पुराणों से मुक्त करना होगा। यह बन्धन बहुत मजबूत है और इसमें अलगाव सम्भव नहीं है। यहाँ भी इन दोनों को एक साथ ही नष्ट करना होगा। वेदों का सम्बन्ध ईश्वर से है। इसलिए ईश्वर से भी निपटना होगा।

अगर आप वेदों से मजबूती से पेश आते हैं, तो ईश्वर को भी झटका लगेगा। यहां पर किसी भी व्यक्ति के लिए दुविधा की स्थिति बन सकती है। लेकिन, ईश्वरीय सत्ता को हिलाने से भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। जाति धर्म, वेद, ईश्वर सभी को नष्ट किया जाना चाहिए। वे एक-दूसरे से इस कदर जुड़े हुए हैं कि उनमें से किसी को भी अलग कर पाना या उनको अलग-अलग नष्ट कर पाना मुश्किल है। ऐसे में जब हम उन सभी को एक साथ नष्ट करेंगे, तो यदि उनमें से किसी में जरा-सा भी दम होगा, तो वह नष्ट होने से बच जाएगा।

इसलिए, जब हम जाति-व्यवस्था को नष्ट करना चाहते हैं और धर्म भी नष्ट होता है, तो होने दें। हम ऐसा धर्म नहीं चाहते, जिसमें जाति-व्यवस्था जैसी गड़बड़ी हो। उसे नष्ट हो जाने दीजिए; आज और अभी। जब आप धर्म को जलाते हैं, तब अगर वेद भी जल जाता है, तो जलने दीजिए। जब आप वेद को जलाएँ, तब अगर ईश्वर भी जलता है, तो उसे जल जाने दीजिए। हमें ऐसे ईश्वर की आवश्यकता नहीं।

गुरमीत अम्बाला, राज्य सचिव तर्कशील सोसायटी हरियाणा की सेवा निवृति की पार्टी में तर्कशील कार्यक्रम

30 सितम्बर 2023 को गुरमीत अम्बाला की सेवा निवृति की 1 अक्टूबर को उनके द्वारा रखी गई पार्टी में चमत्कारों का पर्दाफाश एंव जादू का कार्यक्रम रखा गया, जिसमे तर्कशील सोसायटी हरियाणा के राज्य प्रधान एंव तर्कशील जादूगर फरियाद सनियाणा ने चमत्कारों का पर्दाफाश प्रस्तुत किया जिसमें तर्कशील साथी रामप्रसाद ने सहयोग किया। सम्बोधन भाषण एंव कमेंट्री प्रा. बलवंत सिंह ने की। अपने सम्बोधन भाषण में प्रा.बलवंत सिंह ने तर्कशील सोसायटी की 23 शर्तों की चुनौती को दर्शकों के सामने रखा एंव सोसायटी द्वारा पांच लाख ईनाम, चुनौती जीतने वाले के लिए घोषित की। उन्होंने बाबाओं,तांत्रिकों द्वारा किए जाने वाले चमत्कारों की व्याख्या भी की। फरियाद सानियाणा ने वाटर ऑफ इंडिया, खाली हाथों से रुमाल व छड़ी बनाने, खाली डिब्बे से टॉफियां निकालने आदि बहुत से मनोरंजक ट्रिक दिखा कर पार्टी में उपस्थित मेहमानों का मनोरंजन व ज्ञान वर्धक जानकारी दी। इस अवसर पर तर्कशील साथी हरबिलास ने भी अपनी बात रखी व दर्शकों को अंधविश्वासों से बचने की अपील की। इस कार्यक्रम में बहुत से तर्कशील साथियों अनुपम सिंह, बलबीर सैनी, मिसेज अनुपम,जयपाल, टहल सिंह गिल, कर्मजीत सिंह, बलजीत सिंह, बलदेव महरोक, रमेश आदि ने भाग लिया लगभग तीन सौ मेहमानों ने इस मनोरंजक व ज्ञान वर्धक कार्यक्रम को देखा व प्रशंसा की। सभी आए हुए मेहमानों का गुरमीत अम्बाला ने धन्यवाद किया ।

दुःखद खबर

तर्कशील सोसायटी हरियाणा के एक्टिव मेम्बर व इस्माईलाबाद इकाई प्रधान कर्मजीत सिंह के पिता जी कुलवंत सिंह जी (73 वर्ष) का बीमारी के चलते 11.9.2023 को निधन हो गया है। जिनके मृतक शरीर का दहन 12.9.2023 को गांव ठसका मीरां (अम्बाला)में हुया।

तर्कशील सोसायटी इस दु:खद घड़ी में परिवार को गहरी संवेदना व्यक्त करती है।



पंजाब स्कूल शिक्षा विभाग के SCERT पंजाब विंग की सहायक निदेशक के साथ तर्कशील सोसायटी पंजाब के राज्य प्रभारी राजेन्द्र भदौड़ एंव पत्रिका तर्कशील सम्पादक बलबीर लौंगोवाल के नेतृत्व में तर्कशीलता को बढ़ावा देने के लिए मांग पत्र देते हुए, साथ मे हैं साथी सुमीत सिंह, अजीत प्रदेशी, सतपाल सिलोह, गुरमीत खरड़ एंव सुरजीत मोहाली



पंजाबी ट्रिब्यून के सम्पादक स्वराजबीर को तर्कशील सोसायटी पंजाब के साथी सुमीत सिंह, अजीत प्रदेशी, गुरमीत खरड़, जोगा सिंह व कुलविंदर नागरी मांग पत्र सौंपते हुए



दूरदर्शन केंद्र ,जलन्धर के निदेशक श्री पुनीत सहगल को तर्कशील सोसायटी पंजाब के राज्य कार्यकारिणी सदस्य सुमीत सिंह, सुरजीत टिब्बा, विजय राही, सुरिंदरपाल और नसीब चन्द बबी मांग पत्र सौंपते हुए

नवंबर-दिसंबर 2023 Reg. No. HARHIN/2014/60580 वर्ष 10 अंक 6



If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....